रहस्य
आभामंडल
का
Secret
of
AURA
मुनि किशनलाल

रहस्य आभामंडल का

(Secret of Aura)

मुनि किशनलाल

आशीर्वचन

अर्हम्

अध्यात्म की साधना में ध्यान योग का भी महत्त्व है। परम पूज्य गुरुदेव तुलसी और परम पूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी के द्वारा इसी संदर्भ में प्रेक्षा ध्यान पद्धति का सूत्रपात किया गया। उसी से जुड़ा हुआ जीवन विज्ञान का उपक्रम है।

शासन श्री प्रेक्षा प्राध्यापक मुनिश्री किशनलालजी स्वामी ध्यानयोग के क्षेत्र में कार्य करनेवाले संत हैं। वे वर्षों से इस कार्य में संलग्न हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'रहस्य आभामंडल का' पाठकों को अध्यात्म की साधना में आगे बढ़ाने में सफल बने। शुभाशंसा।

—आचार्य महाश्रमण

बालोतरा (राजस्थान)

भूमिका

आभामंडल : व्यक्ति से समष्टि के कल्याण तक

'रहस्य आभामंडल का' नामक ग्रंथ अपने आप में आध्यात्मिक चिंतन परंपरा की सर्वोत्तम परिणति है। आभामंडल के विषय में यह ग्रंथ न केवल भारत के, अपितु समग्र विश्व के जिज्ञासुओं का सदैव मार्गदर्शन करता रहेगा। आभामंडल क्या है? उसको जानने की जिज्ञासा ही हमें उसकी ओर अग्रसर करती है। जिस तरह 'ब्रह्मसूत्र' का आरंभ 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' नामक प्रथम सूत्र से होता है, वैसा ही आरंभ यहाँ पर 'अथातो आभामंडल जिज्ञासा' के द्वारा होता हुआ दिखाई पड़ता है।

अस्तित्व की बहती धारा का न कोई आदि है, न कोई अंत। उसी की एक धारा का नाम है जीवन। 'महाभारत' में कहा गया है—'न मानुषात् परतरं हि किंचित्', अर्थात् इस पृथ्वी पर मनुष्य जीवन से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। मनुष्य जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः मनुष्य अपने आभामंडल से जुड़ा हुआ है। आभामंडल जैसे गहन विषय का यहाँ पर सुचारु रूप से निरूपण किया गया है। 24 अध्यायों में विभाजित इस ग्रंथ के विभिन्न अध्यायों के शीर्षक अपने आप में विषय—वस्तु का पूर्णतया विवरण प्रस्तुत करते हैं। कुछ शीर्षक द्रष्टव्य हैं—रहस्य आभामंडल का, कैसे परखें आभामंडल को? रहस्य चिर युवा रहने का, कैसे करें आत्मदर्शन की यात्रा, आत्मविद्या परम विद्या आदि। अन्य अध्यायों के नामों का उल्लेख अनुक्रमणिका स्वयं काव्यात्मक होने के साथ—साथ विषय—वस्तु को स्वयंसिद्ध कर देने में समर्थ है।

प्रारंभ में ही आभामंडल को परिभाषित करते हुए लेखक महोदय कहते हैं कि ''वह एक रंगीन भावधारा है। भावों के अनुरूप निकलनेवाली ऊर्जा—तरंगें विभिन्न रंगों के रूप में प्रकट होती हैं। इन रंगों की विशेष कैमरों द्वारा वीडियोग्राफी की जाती है। क्रिलियन फोटोग्राफी से दृश्य बन जाता है। रंग परिवर्तन से भावों के परिवर्तनानुसार आभामंडल मस्तिष्क का प्रभामंडल बनकर महापुरुषों के मस्तक के पीछे प्रकाश—पुंज सा दिखाया जाता है। शुभ भावों से निकलनेवाली रश्मियाँ—तेजस, पद्म और शुक्ल लेश्या कहलाती हैं। अशुभ भावों से निकलनेवाली रश्मियाँ मलिन होती हैं, जो कापोत, नील और कृष्ण कहलाती हैं। आभामंडल के लिए अंग्रेजी में 'ओरा' शब्द का प्रयोग होता है। दूसरे शब्दों में हम आभामंडल को 'चेतना की परछाईं' भी कह सकते हैं। आत्मा रूपी चैतन्य और सत्त्व, रजस और तमस रूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति के संतुलन से ही आभामंडल का संतुलन बन सकता है।''

आभामंडल को हम कैसे परखें? इस विषय का बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से निरूपण किया गया है। मंत्र—ध्वनि द्वारा आभामंडल की अनुभूति हो सकती है। हमारे मंगलमय 'सुमनसा स्याम' और 'श्री सम्पन्नोऽहं स्याम्' जैसे संकल्पों द्वारा हम सदैव प्रसन्न और संपन्न रह सकते हैं। तत्पश्चात् स्वस्थ, चमकीले और प्राणवान् आभामंडल का विस्तृत परिचय दिया गया है। हमारी शारीरिक व मानसिक बीमारियों का मुख्य कारण हमारी नकारात्मक विचारधारा और अवसाद (डिप्रेशन) है। अब प्रश्न उठता है कि अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म आभामंडल को हम कैसे देखें? आभामंडल को देखना और समझना असंभव तो नहीं है, लेकिन मन की चंचलता के कारण कठिन अवश्य है। श्वास प्रेक्षा तथा प्राणायाम के माध्यम से इसको देखने का अभ्यास किया जा सकता है।

सक्रियता को जीवन और निष्क्रियता को मृत्यु बताते हुए मुनिश्री ने चिर युवा रहने का रहस्य भी हमें बताया है। बुढ़ापे को मन की सोच बताते हुए वे कहते हैं, ''बुढ़ापे और यौवन का संबंध सक्रियता व निष्क्रियता से है। जो पूर्ण रूप से सक्रिय जीवन जी रहा है, वह साठ—सत्तर वर्ष का होकर भी युवा है और जो निष्क्रिय जीवन जी रहा है,

वह पच्चीस वर्ष का होकर भी बूढ़ा है। चिर युवा बने रहने के लिए व्यक्ति के जीवन में सक्रियता तथा सकारात्मक सोच आवश्यक है। वृद्धावस्था भी अनुभव का अक्षय भंडार होती है। अतीत के अनुभवों से सबक लेकर भी व्यक्ति जीवन में पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है।''

इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी बीमारी तनाव और डिप्रेशन है। इस बीमारी को दूर करने का उपाय बताते हुए मुनिश्री कहते हैं कि ''काया की चंचलता के परित्याग से शरीर को हम तनाव—मुक्त कर सकते हैं। कायोत्सर्ग आत्मदर्शन का पहला पड़ाव है। आत्म—साक्षात्कार के लिए चित्त की निर्मलता अनिवार्य है।'' चित्त की ऐसी निर्मलता की बात करते हुए संत कबीरदासजी ने भी कहा है—

''मन ऐसो निर्मल भयो, जैसो गंगा नीर।

पीछे—पीछे हरि फिरे, कहत कबीर—कबीर॥''

अर्थात् ईश्वर—प्राप्ति के लिए कबीरदासजी ने मंत्र—जाप, उपासना और भारी तपश्चर्या की, फिर भी वे असफल रहे; किंतु जब उनका मन गंगा के नीर जैसा निर्मल हो गया, तब स्वयं भगवान् हरि 'कबीर, कबीर' पुकारते उनके पीछे—पीछे फिरने लगे। अर्थात् ईश्वर—प्राप्ति एवं आत्म—साक्षात्कार के लिए मन की निर्मलता ही सर्वोत्तम उपाय है।

शरीर और मन की सात्त्विकता के लिए आहार—शुद्धि अनिवार्य है। 'आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धि' की बात करते हुए 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी युक्ताहार और विहार की बात कही गई है। मनुष्य जीवन के लिए शाकाहार ही सर्वश्रेष्ठ है। इस विषय में विश्व के महान् नाट्य लेखक जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के जीवन का एक बड़ा ही रोचक प्रसंग है।

बर्नार्ड शॉ को 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किए जाने पर उनके अभिनंदन का एक बड़ा समारोह आयोजित किया गया। नगर के प्रतिष्ठित लेखकों सहित सम्माननीय नागरिकों ने शॉ का पुष्प—गुच्छ आदि से हार्दिक अभिवादन किया। तत्पश्चात् शॉ ने अपना प्रतिभाव देते हुए सबके प्रति आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम के पश्चात् भव्य भोजन समारोह का आयोजन भी किया गया था। आयोजकों को पता नहीं था कि बर्नार्ड शॉ शाकाहारी हैं। आयोजकों के आग्रह पर मांसाहारी भोजन के लिए इनकार करते हुए शॉ ने कहा कि ''धन्यवाद! मैं एक जीता—जागता इनसान हूँ। मेरा पेट मरे हुए प्राणियों का कब्रिस्तान नहीं है!'' अर्थात् मनुष्य जीवन के लिए शाकाहार ही सर्वश्रेष्ठ है।

जन्म और मृत्यु के रहस्य को उद्घाटित करते हुए मुनिश्री लिखते हैं—''जीवन का प्रथम पड़ाव है—जन्म और अंतिम पड़ाव है—मृत्यु। सत्य की खोज ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है। आत्मा के अनुभव का नाम ही अध्यात्म है। आत्मा अमूल्य कोहिनूर हीरा जैसा है।'' इस संदर्भ में गुरु नानकदेव भी कहते हैं कि ''कौड़ी को तो बहुत सम्हाला, लाल रतन क्यूँ छोड़ दिया?'' अर्थात् हमारे इस नाशवान् शरीर की कीमत कौड़ी के समान है। इसे तो हम बहुत लाड़—प्यार से सँभालते हैं, किंतु लाल रतन जैसी आत्मा को भूल जाते हैं।

आभामंडल के स्वस्थ विकास के लिए भय—निवारण अनिवार्य है। हमारे मन में से 'कैसे हो भय का निवारण?' नामक अध्याय में मुनिश्री ने भय के विविध पहलुओं को स्पष्ट किया है और प्रेक्षाध्यान को भय—निवारण का श्रेष्ठ साधन बताया है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी दैवी संपत्ति की बात करते हुए 'अभयं सत्त्व संशुद्धि:' में भी अभय को प्रथम स्थान दिया गया है। हमारे मन में भय और बंधन के विषय में उपनिषद् के ऋषि भी कहते हैं—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:', अर्थात् हमारे बंधन और मोक्ष का कारण हमारा मन ही है। किंतु हमारा मन बड़ा ही चंचल है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में मन की चंचलता के विषय में प्रश्न करते हुए अर्जुन कहता है कि—

''चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायुरिव सुदुष्करम्॥''

अर्थात् ''हे कृष्ण! वायु जैसे चंचल मन का निग्रह करना मेरे लिए बड़ा ही कठिन कार्य है।''

तब अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

''असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥''

अर्थात् ''हे महाबाहु! मन वास्तव में अत्यंत ही चंचल है। उसका निग्रह करना भी कठिन है; किंतु अभ्यास और वैराग्य से मन का निग्रह किया जा सकता है।'' चंचल मन की एकाग्रता ही जीवन में सफलता का मूल मंत्र है।

हमारी भारतीय परंपरा में 'सा विद्या या विमुक्तये' का महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया गया है, अर्थात् वही सच्ची विद्या है, जिससे हमें मुक्ति मिलती है। विद्या के भी दो प्रकार हैं—परा विद्या और अपरा विद्या। दोनों विद्याओं का अपने—अपने क्षेत्रों में महत्त्व है; किंतु आत्म विद्या, परा विद्या सर्वोपरि है।

परा विद्या की सूक्ष्म बात बताते हुए मुनिश्री लिखते हैं, ''बहुत छोटी सी सहज यात्रा है आत्मा से परमात्मा तक की। मूर्च्छावश हम लोगों ने परमात्मा को अपने से भिन्न समझकर प्रयास किया। अरे, मैं ही हूँ परमात्मा। तब सारे भेद, अज्ञान, मूर्च्छा दूर हो जाती है। व्यक्ति अपने स्वरूप में आनंदित होकर 'आनंदम्, अहो आनंदम्, अहो आनंदम्' में मस्त होकर झूमने लगता है।''

गुजरात के भक्त कवि नरसिंह मेहता ने भी आत्म विद्या—परा विद्या की ओर इंगित करते हुए कहा है, ''ज्यां लगी आतमा तत्त्व चिन्यो नहि, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।'' अर्थात् हमारे द्वारा की गई साधना जब तक हमें आत्मदर्शन की ओर नहीं ले जाती है—वे सभी व्यर्थ हैं। आत्मतत्त्व को दिखानेवाली विद्या ही सर्वश्रेष्ठ विद्या है। परा विद्या से आत्मदर्शन किया जा सकता है।

हमारी संकल्प—शक्ति को कल्पवृक्ष कहा गया है। अत: हम जैसा संकल्प करेंगे, वैसी ही सृष्टि का सृजन हो जाएगा। इसीलिए हमेशा कल्याणकारी संकल्प करने के लिए 'तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु' की बात कही गई है। दृढ़ संकल्प—शक्ति के द्वारा ही आभामंडल का विकास होता है। हमारे प्राण की ऊर्जा शक्ति के साथ ब्रह्मांड की ऊर्जा शक्ति का तालमेल केवल जरूरी नहीं, अनिवार्य भी है। प्राणायाम को शक्ति का अक्षय भंडार बताते हुए मुनिश्री कहते हैं कि ''प्राण जीवन शक्ति है, जिसका प्राणायाम के माध्यम से विकास संभव है। इसके लिए श्वास प्रक्रिया का उचित प्रशिक्षण आवश्यक है। प्राणायाम में रेचक और पूरक ही नहीं, अपितु कुंभक का भी महत्त्व है। 'तस्मिन् सति श्वास—प्रश्वास योर्गतिर्विच्छेद: प्राणायाम'—महर्षि पतंजलि द्वारा दी गई प्राणायाम की इस परिभाषा का अर्थ है—श्वास—प्रश्वास की गति के विच्छेद अर्थात् कुंभक करने से तथा अचानक श्वास के रुकने से जो स्थिति बनती है, वह प्राणायाम है।''

आत्मविश्वास को संकल्प का पर्याय बताते हुए मुनिश्री कहते हैं कि ''इससे असफलता को सफलता में परिवर्तित किया जा सकता है। श्रेष्ठता की प्राप्ति, नकारात्मक सोच का परित्याग, सकारात्मक सोच का विकास तथा सकारात्मक कार्यों से आत्मविश्वास की प्राप्ति की जा सकती है। हमारे आभामंडल में परिवर्तन से भावों में भी परिवर्तन हो सकता है।

सौहार्द एवं सौजन्य को चेतना की पवित्रतम स्थिति बताते हुए लेखक महोदय ने कहा है कि ''इसका मूल आधार है—पारस्परिक समझ। इसके विकास की सबसे बड़ी बाधा है—संदेह की भावना। सौहार्द के अभाव में परिवार विघटित होते हैं। अत: सौहार्द की भावना का विकास करने के लिए कार्यशालाओं की आयोजना आवश्यक है।''

हमारी परंपरा में 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव' एवं 'अतिथिदेवो भव' की बात कही गई है। इन चार सूत्रों के साथ हम एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूत्र 'परस्पर—देवो भव' भी जोड़ सकते हैं। परस्पर के सौहार्द द्वारा हम 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को साकार कर सकते हैं।

ग्रंथ के अंत में मुनिश्री किशनलालजी ने आज के मनुष्य को शारीरिक एवं मानसिक विडंबनाओं से मुक्त करने के लिए गुरु के मार्गदर्शन और पारिवारिक सौहार्द—प्रशिक्षण कार्यशालाओं के आयोजन को अनिवार्य माना है। उपदेश की अपेक्षा प्रयोग को महत्त्व देते हुए मुनिश्री ने आनेवाले समय में स्वस्थ पारिवारिक समाज की परिकल्पना की है। अपने ही महत्त्वपूर्ण एवं सार्वकालिक विषय—वस्तुवाले इस ग्रंथ का जन—जन में प्रचार—प्रसार हो, जिससे व्यक्ति से शुरू हुई आभामंडल की यात्रा समष्टि के कल्याण की ओर अग्रसर होती रहे। व्यक्ति से समष्टि का बदलाव आभामंडल के बदलाव द्वारा निरंतर होता रहे, यही मेरी शुभकामना है। अंत में, 'वसुधैव कुटुंबकम्' की वैश्विक भावना को चरितार्थ करने के लिए मेरी परम तत्त्व से विनम्र प्रार्थना है—

दुर्जन: सज्जनो भूयात् सज्जन: शान्तिं आप्नुयात्।
शान्तो मुज्यते बन्धेभ्य: मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

अर्थात् इस संसार में दुर्जन मनुष्य सज्जन बने, सज्जन मनुष्य शांति को प्राप्त हो, शांत मनुष्य सब प्रकार के बंधनों से मुक्त हो और ऐसे मुक्त मनुष्य अन्य मनुष्यों को जन्म—मरण के बंधनों से मुक्त करने में समर्थ हों। इति शुभम्।

—डॉ. हरीश द्विवेदी

महामंत्री, हिंदी साहित्य परिषद्

गुरु पूर्णिमा,

अहमदाबाद,

प्राक्कथन

यह जगत् रहस्यमय है। आस—पास जो घटित हो रहा है, जब उसी को पहचानना मुश्किल है, तो आभामंडल की पहचान तो और भी कठिन है। मानव शरीर की रचना विलक्षण है। एक—एक कोशिका की रचना, उसकी कार्यशैली को समझना भी महान् कठिन काम है। 'जीन' की कहानी ने तो एक नया अध्याय खोल दिया है। किसी व्यक्ति की पहचान के लिए, उसके बाह्य व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करने के लिए नाम, शिक्षा, स्थान आदि के संदर्भ में पूछा जाता है। यह सब स्थूल जानकारी है। इससे व्यक्ति के संबंध में पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। व्यक्ति की संपूर्ण जानकारी तो आभामंडल से भी प्राप्त नहीं हो पाती है।

मानव जीवन विचित्र है। जीवन मात्र शरीर ही नहीं है, शरीर के साथ अनेक तथ्य जुड़े हुए हैं। जीवन के सात प्रमुख तत्त्व हैं। इन सात तत्त्वों के समवाय से हमारे जीवन का प्रादुर्भाव होता है। ये सात तत्त्व हैं—शरीर, श्वास, प्राण, मन, भाव (आभामंडल, लेश्या), कर्म, चित्त—चेतना। प्रत्येक तत्त्व की अपनी अलग विशेषता होती है।

आभामंडल का निर्माण व्यक्ति की भावधारा से होता है। जैसे भाव होते हैं, वैसी ही रंगीन रश्मियाँ शरीर के चारों ओर उभर आती हैं। जैसे वर्षा के मौसम में इंद्रधनुष बनता है, वैसे ही रंगीन भावधाराएँ भी उभरती रहती हैं। ये रंगीन भावधाराएँ आभामंडल का निर्माण करती हैं। लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर ने छह लेश्याओं के रूप में मनुष्य के स्वभाव और उसकी प्रवृत्ति का वर्णन किया। 'लेश्या' जैन पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है—रंगीन भावधारा। 'लिसति इति लेश्या'। 'लिसति' का अर्थ है—रिसना, झरना। इस प्रकार जो झरती है, अर्थात् शरीर से बाहर रंगों के रूप में प्रकट होती है, वह 'लेश्या' होती है। जैसे नए मटके से पानी झरता है, वैसे ही व्यक्ति के अच्छे—बुरे भावों के कारण शरीर के बाहर प्रकट होनेवाली रंगीन भावधारा 'लेश्या' कहलाती है। इसे 'आभामंडल' (Aura) के नाम से भी जाना जाता है।

'रहस्य आभामंडल का' पुस्तक में आभामंडल के संदर्भ में विभिन्न कोणों से चर्चा की गई है। पुस्तक लेखन का लक्ष्य केवल आभामंडल के विषय में जानकारी देना ही नहीं, अपितु अपने अध्यवसाय और कषाय को उपशांत बनाकर चेतना को शुद्ध स्वरूप (कैवल्यज्ञान) में प्रतिष्ठित करने का प्रयास है। यदि हम अपने ज्ञान को प्रियता—अप्रियता, राग—द्वेष आदि में परिणित न होने दें, मात्र शुद्ध—ज्ञान (कैवल्यज्ञान) में स्थित रहने दें तो निस्संदेह हमारी चेतना निरावरण स्वरूप को उपलब्ध हो सकती है।

समाज हमें दो दृष्टि सिखाता है—किसी वस्तु को प्रिय—अप्रिय या अच्छे—बुरे आदि कोण से देखो। भगवान् महावीर ने तीसरी दृष्टि तटस्थता प्रदान की। उन्होंने समझाया, 'केवल देखें', 'केवल सुनें'। अपनी ओर से सुंदर—असुंदर का लेबल न लगाएँ। वस्तु या घटना जैसी है, उसे उसी रूप में देखें। अच्छी—बुरी, सुंदर—असुंदर का लेबल लगाने से वह न अच्छी हो सकती है और न बुरी। केवल हमारे भावों में मलिनता आ जाती है और हमारा आभामंडल बदल जाता है। यदि हम तटस्थ रहना सीख जाएँ तो हमारे जीवन में गहन शांति और आनंद उतर सकता है, ऐसा मेरा अनुभव और विश्वास है।

मेरे दीक्षा प्रदाता गुरु आचार्यश्री तुलसी और मार्गद्रष्टा आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अनुग्रह को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने साधना के प्रयोगों से साधना का मार्ग प्रशस्त किया। आचार्य तुलसी के जन्म—शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में यह अर्घ्य समर्पित है।

आचार्यश्री महाश्रमणजी की स्थिरता और निर्मलता सदैव पे्ररणा देती रहती है। उन्होंने आशीर्वचन प्रदान कर प्रस्तुत कृति का महत्त्व बढ़ाया।

सहयोगी मुनि हिमांशु कुमारजी, मुनि नीरज कुमारजी की सेवा—भावना को भुलाया नहीं जा सकता। वे साधुवाद के पात्र हैं। डॉ. धर्मचंद जैन, भीलवाड़ा ने समय—समय पर अपने सुझावों से पुस्तक को व्यवस्थित रूप देने में सहयोग प्रदान किया, एतदर्थ साधुवाद। प्रो. सोहनलाल लोढ़ा, अजमेर ने भी पुस्तक को आद्योपांत पढ़कर समीक्षा की, यह उनकी गुण—ग्राहकता है। जीवन विज्ञान अकादमी, जैन विश्व भारती, लाडनूँ के कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त हुआ, सभी के प्रति मंगलकामना।

—मुनि किशनलाल

न्यू तेरापंथ भवन, बालोतरा (बाड़मेर)

अध्याय— 1

रहस्य आभामंडल का

आभामंडल की प्रकृति व स्वरूप

- आभामंडल क्या है?
- आभामंडल को कैसे पहचानें?
- आभामंडल के रंगों की व्याख्या और महत्त्व।
- आभामंडल ऊर्जाशील, प्राणवान् कैसे बनें?
- आभामंडल का संतुलन।

आभामंडल क्या है?

आभामंडल के लिए अंग्रेजी शब्द 'ओरा' आता है। आभामंडल को रंगीन 'भावधारा' भी कहा जा सकता है। आभामंडल की तरह महापुरुषों के मुखमंडल के पीछे चमकीला पीला चक्र सा होता है। उसे 'प्रभामंडल' कहा जाता है। आभामंडल संपूर्ण शरीर के चारों ओर फैली हुई विभिन्न रंगों की अंडाकृति होती है। शरीर से निकलनेवाली तरंगों से आभामंडल निर्मित होता है। आभामंडल मात्र रंगीन किरणें ही नहीं है, बल्कि उनसे अच्छी और बुरी भाव स्थिति की पहचान होती है। आभामंडल रंगीन पौद्गलिक (भौतिक) परमाणु पिंडों का पुंज है। जैन दर्शन एवं प्रेक्षाध्यान में इसे 'लेश्या' कहा गया है, जो जैन पारिभाषिक शब्द है। 'लेश्या' का तात्पर्य है—जो झरता है। 'लिसति इति लेस्या'। जिस प्रकार नए मटके से पानी रिसता है, झरता है, ऐसे ही चेतना, भाव और कर्म संस्कार से निकलनेवाली रंगीन रश्मियाँ 'लेश्या' कहलाती हैं। जैन परंपरा और प्रेक्षाध्यान में लेश्याध्यान का अत्यंत महत्त्व है। यहाँ तक कहा गया है कि जिस लेश्या में मृत्यु होती है, व्यक्ति अगले जन्म में उसी लेश्या में पैदा होता है। शुभ और श्रेष्ठ लेश्या में उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त करता है। अशुभ और निकृष्ट लेश्या में उत्पन्न होनेवाला व्यक्ति नीची स्थिति (गति) को प्राप्त करता है। वैदिक परंपरा में इसी बात को दूसरे रूप में अभिव्यक्त किया गया है। 'अंत मति सो गति', अर्थात् अंतिम स्थिति में जो मति रहती है, उसके ही अनुसार व्यक्ति जन्म और जीवन को प्राप्त करता है।
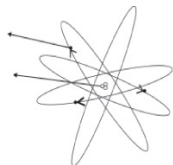
विज्ञान प्रभामंडल को ऊर्जा के रूप में अभिव्यक्त करता है। इनके कथनानुसार, यह ऊर्जा क्षेत्र प्रत्येक पदार्थ को घेरे हुए है। चेतन शरीर की भाँति पदार्थ का भी आभामंडल है। इसे विज्ञान की परिभाषा में ऊर्जा कहा गया है। प्रत्येक भौतिक पदार्थ का प्रत्येक कण इलेक्ट्रॉन व प्रोटॉन से बना होता है। वह निरंतर गतिशील है। किंतु भौतिक पदार्थ की अपेक्षा चेतन जगत् अधिक सक्रिय और प्राणवान् होता है, जिसकी सक्रियता और ऊर्जा का सहजता से अनुभव किया जा सकता है।

प्रोटॉन में धनात्मक ऊर्जा (आवेश) होती है, जो केंद्र के पास सक्रिय रहते हैं। जबकि इलेक्ट्रॉन में ऋणात्मक ऊर्जा

होती है, वह केंद्र के आस—पास परिक्रमा करती है।

ऊर्जा—क्षेत्र मानव शरीर के चारों ओर फैला हुआ होता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना आभामंडल होता है। किसका कितना शक्तिशाली ऊर्जा क्षेत्र है, यह उसकी पवित्रता, स्वास्थ्य और भावधारा पर आधारित होता है। पवित्रता का तात्पर्य उसके आवेश—आवेग की स्थिति से है। जिस व्यक्ति के आचरण में मैत्री और करुणापूर्ण व्यवहार होगा, वह उतना ही पवित्र स्थितिवाला होगा। अखाद्य, अपेय का त्याग एवं नशा—मुक्त जीवन—शैलीवाले व्यक्ति की चेतना पवित्र होती है। सात्त्विक भोजन, व्यसन—मुक्त जीवन तथा अच्छी आदतों से आभामंडल शक्तिशाली होता है। स्वस्थ व्यक्ति का आभामंडल शक्तिशाली और चमकीले रंगोंवाला होता है। जिस व्यक्ति की भावधारा शांत और संतुलित है, उसका आभामंडल भी शक्तिशाली होता है। आभामंडल अनुभव न होने के भी अनेक कारण होते हैं। अखाद्य, सड़ा हुआ भोजन करने से, तंबाकू सेवन तथा गंदी आदतों से आभामंडल कमजोर होता है।

आभामंडल की पहचान

जब प्रत्येक सजीव और निर्जीव पदार्थ का अपना ऊर्जा क्षेत्र होता है, तब वह एक—दूसरे को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता है। विश्व का प्रत्येक पदार्थ, चाहे निकट है या सुदूर, वह अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता है। कौन कितना प्रभाव डालता है या प्रभावित होता है, यह व्यक्ति के गुणधर्म पर निर्भर करता है। यह भी निश्चित है कि एक—दूसरे की ऊर्जा का आभामंडल में परिवर्तन होता रहता है।

ऊर्जा क्षेत्र को समझने के लिए सर्वप्रथम अपने ताप का अनुभव करना होता है; फिर शरीर में होनेवाले स्पंदन का अनुभव करना होता है। तीसरा बिंदु है—आस—पास आनेवाले व्यक्तियों की उपस्थिति से क्या प्रतिभासित होता है? चौथे में, व्यक्ति जिस कमरे में रहता है या सोता है, तब उसे कैसा अनुभव होता है? ध्वनि तरंगें, विद्युतीय प्रकाश, चुंबकीय शक्ति—इनमें से किसी का भी कुछ अनुभव होता है या सकारात्मक, नकारात्मक कौन से विचार आ रहे हैं? शरीर के किसी भाग पर दबाव, दर्द या कठिनाई अनुभव हो रही है? इन सबका उत्तर व्यक्ति को जागरूक हो संवेदनशील स्थिति का अनुभव कर, अपने अर्द्ध—जाग्रत् चित्त से पूछकर, उसका उत्तर प्राप्त करना चाहिए। उस उत्तर की प्रामाणिकता को समझने के लिए व्यक्ति किस स्थिति को जानने का अभ्यास और प्रयास कर रहे हैं? उसके लिए वह सर्वप्रथम स्वयं को शांत व स्थिर बनाकर आँखें बंद करे। अपने चारों ओर होनेवाली स्थिति का अनुभव करें। जब सामनेवाला श्वास छोड़ रहा हो तो स्वयं ग्रहण करें। जब आप श्वास छोड़ें, तब सामनेवाला श्वास ग्रहण करें। दोनों प्रयोक्ता शरीर को एकाकार अनुभव करें, फिर प्रेक्षा करें कि शरीर के किस अवयव में संवेदना, पीड़ा अनुभव हो रही है? अर्द्ध—जाग्रत्, अजाग्रत् चित्त में जो अतींद्रिय क्षमता है, वह भीतर होनेवाली स्थिति और घटनाओं का साक्षात्कार कर लेती है। उसे अंतर्दृष्टि से आभास हो जाता है। इस आभास की व्याख्या के लिए अनुभव और प्राण की सक्रियता का अभ्यास करना होता है।

प्राण के प्रभाव को अनुभव करने के लिए दोनों हाथों को एक—दूसरे के आमने—सामने 10 सेंटीमीटर दूर रखें। फिर दोनों हाथों को 5 सें.मी. नजदीक लाएँ। फिर देखें, दोनों हाथ एक—दूसरे की ओर खींचे जा रहे हैं। ऐसा एक या दो मिनट करने से चुंबकीय ऊर्जा पैदा हो जाती है। इस ऊर्जा से स्वयं के शरीर की ऊर्जा का अनुभव किया जा सकता है, दूसरे व्यक्ति की ऊर्जा की स्थिति का अनुभव किया जा सकता है। यह ऊष्मा चुंबकीय शक्ति को स्पर्श से अनुभव करती है। प्रकाश और रंग का अनुभव चक्षु—दर्शन का परिणाम होता है, जब किसी व्यक्ति को एकटक देखकर आँखें बंद कर अनुभव करते हैं कि कौन सा रंग उभरकर सामने आ रहा है तथा जो रंग आभामंडल पर

चमक रहा हो, उस रंग की व्याख्या की जा सकती है। लेश्याध्यान में छह रंगों का विश्लेषण किया गया है—'कृष्ण लेश्या निकृष्टतम, नील लेश्या निकृष्टतर और कापोत लेश्या निकृष्ट; जबकि तेजो लेश्या श्रेष्ठ, पद्‍म लेश्या श्रेष्ठतर और शुक्ल लेश्या श्रेष्ठतम है। इस तरह रंगों के अनुसार निर्णय लेना होता है।

एकांत कृष्ण (काला) सर्वथा खराब ही हो, ऐसा नहीं है। कृष्ण रंग के भी दो विभाग किए जा सकते हैं। जो चमकीले (ब्राइट) रंग हैं, वे अच्छे होते हैं; जो भद्दे, चमक—रहित रंग होते हैं, वे बुरे प्रभाववाले माने जाते हैं। फिर चाहे वह लाल हों, पीले, श्वेत हों, सभी में चमकदार—सुंदर, स्वच्छ रंग श्रेष्ठ स्वभाववाले हैं। भद्दे, चमक—रहित रंग गंदे स्वभाव की ओर संकेत करनेवाले हैं। आभामंडल के रंगों का संतुलन आवश्यक है। स्वास्थ्य को संतुलित बनाने के लिए रंगों का संतुलन भी आवश्यक है। शरीर रचना जिन तत्त्वों से हुई है, वे सभी रंगीन हैं। रंगों की अपनी आवृत्ति होती है। शरीर में रंगों के असंतुलन से न केवल शरीर अस्वस्थ होता है, बल्कि मन और भाव भी अस्वस्थ होने लगते हैं। इस तरह आभामंडल के निर्माण में रंगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

आभामंडल के रंगों का विश्लेषण

रंग श्रेष्ठ और निकृष्ट दोनों होते हैं। श्रेष्ठ चमकीले और निकृष्ट भद्दे रंगवाले होते हैं। रंग सृजन करते हैं तो विनाश भी कर सकते हैं। ये सकारात्मक और नकारात्मक तथा अनुकूल और प्रतिकूल दोनों हो सकते हैं। ग्रह और नक्षत्र एक व्यक्ति के अनुकूल तथा दूसरे व्यक्ति के प्रतिकूल हो सकते हैं। जहाँ एक रंग शरीर को स्वस्थ रखने में समर्थ होता है, वहीं दूसरा स्वास्थ्य का ह्रस भी कर सकता है। रंग मात्र संकेत हैं, क्योंकि किसी तथ्य की व्याख्या केवल रंग से ही नहीं, अपितु अपने भीतर विकसित होनेवाले अन्य तत्त्वों से भी प्रभावित होती है। इसलिए किसी तथ्य का विश्लेषण करते समय समग्रता से ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

रंग की पसंद से व्यक्ति की प्रकृति को समझा जा सकता है। आयुर्वेद में मानव की प्रकृति को तीन तरह से विश्लेषित किया गया है—वात, पित्त और कफ। वात (वायु) चंचल, गतिशील, अस्थिर और किसी के साथ मिल सकने की क्षमतावाला है। वायु का रंग काला एवं हलका नीला होता है। ऐसे लोगों की पसंद—जैसा मिल जाए, उसे स्वीकार कर लेते हैं। अपनी पसंद नहीं। पित्त स्थिर, उष्ण और उत्तेजक होता है। ऐसे लोग नमकीन—पसंद होते हैं; लाल, पीला, संतरे का रंग पसंद करते हैं। अपनी बात की पकड़ होती है। अपनी बात को दूसरों से मनवाते हैं। दूसरे की बात मानते नहीं। बहस करने में कुशल होने से दूसरों से सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई आती है। कफ प्रकृतिवाले लोग शांत स्वभाव के होते हैं। दूसरों के साथ सामंजस्य स्थापित करनेवाले, दूसरों की बातों को स्वीकार भी कर लेते हैं। खाने में मीठा पसंद करते हैं। व्यवहार में मृदु एवं मधुरभाषी होते हैं। सफेद एवं बदली रंग पसंद करते हैं।

सामान्य रूप से वात, पित्त, कफ तीनों की मुख्य प्रकृति की अवधारणा के आधार पर लेश्या और आयुर्विज्ञान की दृष्टि से व्याख्या की गई है।

इंद्रधनुष में सातों रंग होते हैं। सूर्य की रश्मियों को त्रिआयामी काँच (प्रिज्म) से गुजारने पर इंद्रधनुष के सात रंग देखे जा सकते हैं। इन सात रंगों की व्याख्या आभामंडल (ओरा) के संदर्भ में वैज्ञानिक अभ्यास देकर एक सर्वथा नया तथ्य जगत् के सम्मुख प्रकट किया गया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने 'आभामंडल' नामक पुस्तक में इंद्रधनुष के रंगों की वैज्ञानिक व्याख्या की है। उस पुस्तक में रंगों के गुणों की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि पाप प्रवृत्तिवाले का आभामंडल मलिन होता है। हिंसा से काला, क्रोध से लाल, माया से नीला—ये रंग व्यक्तित्व के सूचक हैं।

कृष्ण लेश्या की दृष्टि से—लालसा, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशंसता, अजितेंद्रियता आदि कृष्ण लेश्या के परिणाम हैं।

ईर्ष्या, कदाग्रह, अज्ञान, माया, निर्लज्जता, वासना, क्लेश, रस—लोलुपता—ये नील लेश्या के परिणाम हैं। वक्रता, अपने दोषों को ढकना, दूसरे का मर्म उद्घाटित करना, अप्रिय कथन कापोत लेश्या के लक्षण हैं। ये तीनों अप्रशस्त लेश्याएँ हैं।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ प्रशस्त हैं। इनसे व्यक्ति का चित्त और भाव निर्मल होते हैं। तेजो लेश्या में शक्ति का रूपांतरण हो जाता है। क्रूरता करुणा तथा कल्याण में बदलने लगती है। पद्म लेश्या से चरित्र में परिवर्तन घटित होता है। पद्म लेश्या से व्यक्ति में सकारात्मक सोच विकसित होती है और चंचलता कम होती है। मन की एकाग्रता होने लगती है। शुक्ल लेश्या में व्यक्ति का चित्त अत्यंत निर्मल हो जाता है। सहज ध्यान में निर्विचार स्थिति आ जाती है। व्यक्ति शांत, सरल और साधना की उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

आभामंडल को प्राणवान् बनाना

आभामंडल शरीर के चारों ओर रंगों की धारा का एक प्रकार का प्रवाह होता है। जहाँ प्रवाह और गतिशीलता है, वहाँ ऊर्जा का होना स्वाभाविक है। ऊर्जा और रंग दोनों में केवल आवृत्ति (फ्रीक्वेंसी) का अंतर है। ऊर्जा की तुलना में रंग की फ्रीक्वेंसी अधिक होती है। आभामंडल और प्राण—ऊर्जा को शक्तिशाली बनाने के अनेक उपाय हैं। इनमें सात्त्विक भोजन, व्यसन—मुक्त और प्रामाणिक जीवन तथा अहिंसक जीवन—शैली आदि प्रथम उपाय हैं। प्राणायाम के द्वारा प्राण शक्तिशाली बनता है। संकल्प—शक्ति द्वारा आभामंडल को भी निर्मल और शक्तिशाली बनाया जा सकता है। आभामंडल को प्राणवान् बनाने के लिए आवश्यक है—प्राण प्रयोग का सहारा लेना।

प्राण प्रयोग
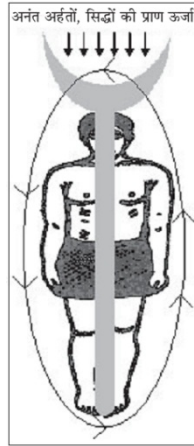
अपने स्थान पर समपादासन में स्थिर रहें। दोनों पैर मिले हुए, हाथ शरीर से सटे हुए, आँखें कोमलता से बंद रखें। कल्पना करें कि आप शांत और स्थिर खड़े हैं। मस्तिष्क में ताँबे का खंभा शरीर के भीतर खोपड़ी से होता हुआ, गले से नीचे सीने और पेट को चीरता हुआ दोनों पाँवों के बीच से पाँव तल तक चला जाता है। सिर के ऊपर टी.वी. डिस्क की तरह छतरीनुमा एंटीना खुला हुआ है। यह शरीर विद्युत् तारों से आच्छादित है। तीव्र गति से श्वास लेते हैं, तब ब्रह्मांड में फैली प्राण ऊर्जा डिस्क में भर रही है। ताँबे का खंभा ऊर्जा से परिपूर्ण हो गया है। ऊर्जा का अतिरेक हो जाने के कारण यह ऊर्जा शरीर में बाएँ (left) हाथ से साथल, पैर तल एवं दाएँ (right) पैर की पिंडली, साथल, हाथ और सिर की ओर घूम रही है। तीव्र गति से बहनेवाला यह प्राण शरीर के कण—कण में प्रवाहित हो रहा है। शरीर में बाएँ से दाएँ विद्युत् का प्रवाह बह रहा है। यह पहला चक्र गतिमान है।

दूसरा चक्र, पैर की एड़ियों से ऊपर पैर, पिंडली, कटि भाग एवं रीढ़ की हड्डी के मध्य होता हुआ सिर से फिर ललाट, कंठ, सीना, नाभि, पैरों से होकर तलवे तक ऊर्जा बह रही है। ऊर्जा का चक्र चलने लगा है। पीछे से आगे प्राण का प्रवाह तीव्र गति से बह रहा है। बाएँ से दाएँ, पीछे से आगे दोनों चक्र तेजी से घूम रहे हैं। दोनों के घूमने से मध्य का खंभा चुंबकीय हो गया है। चुंबक का क्षेत्र अब आगे पूर्व की ओर बढ़ रहा है, क्षितिज के अंत तक फैलता जा रहा है। फिर पीछे पश्चिम की ओर फैलने लगा। यह पश्चिम के क्षितिज के अंत तक फैलने लगा। उत्तर, फिर दक्षिण, ऊपर—नीचे प्राण पूरे ब्रह्मांड में फैल गया है। चेतना का यह पिंड संपूर्ण ब्रह्मांड में फैल गया है। शरीर नहीं, मात्र चेतना ही रह गई है। चेतना में कोई अवरोध नहीं है। केवल शुद्ध चेतना, शुद्ध चेतना ही शेष रह गई।

प्राण के प्रवाह को सक्रिय करने का एक क्रम है—चैतन्य केंद्रों को सक्रिय करना। शरीर में प्रेक्षाध्यान के क्रम में 13 चैतन्य केंद्र हैं। मूलाधार (शक्ति केंद्र) में ऊर्जा भरपूर है। तीव्र श्वास की जल्दी—जल्दी चोट करें और अनुभव करें कि मूलाधार चक्र (शक्ति केंद्र) जाग्रत् हो गया है। बंद आँखों से वहाँ होनेवाले स्पंदन एवं कंपन को अनुभव करें।

ऐसे ही स्वास्थ्य केंद्र (स्वाधिष्ठान चक्र) के संवेदनों का अनुभव करें। क्रमश: सभी केंद्रों का अनुभव करते हुए सहस्रार (ज्ञान—केंद्र) तक जाएँ। स्पंदन के साथ प्रकाश का अनुभव करें। अनुभव करें कि मैं प्राणमय हो गया हूँ। इस प्राण से स्वयं के शरीर, मन और भावों को निर्मल बनाएँ। स्वस्थ बनने के लिए लेश्या का उपयोग किया जा सकता है। जिसके चैतन्य केंद्र जाग्रत् हो जाते हैं, वह दूसरों के चैतन्य केंद्रों को सक्रिय करने में सहयोगी बन सकता है।
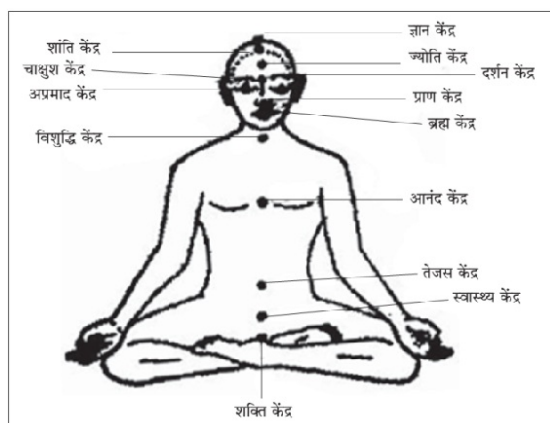
चैतन्य केंद्रों के जाग्रत् होने पर व्यक्ति अनिमेष प्रेक्षा (त्राटक) के माध्यम से आभामंडल को परखने की दृष्टि प्राप्त कर लेता है। आभामंडल को परखने के लिए आप किसी बिंदु अथवा किसी केंद्र पर 5 मिनट से शुरू कर 15 मिनट तक क्रमश: अभ्यास बढ़ाएँ। किसी व्यक्ति या वस्तु पर खुली आँखों से (बिना टिमटिमाए) एकाग्र होकर ध्यान केंद्रित करें। फिर नीले खुले आकाश में ऊपर दृष्टि को केंद्रित करें। वहाँ जो कुछ दिखाई दे रहा हो, उस पर त्राटक करें। फिर आँखें बंद कर देखें। जो कुछ आकार या विचार आए, उसका अनुभव करें। चार सप्ताह तक ऐसा अभ्यास करें। जो परिणाम आए या जो विचार उद्भव हो, उसके अनुसार स्वयं को निर्देशित व नियंत्रित करें। इस प्रयोग के पश्चात् आभामंडल के निरीक्षण का अभ्यास करें। इस निरीक्षण का बार—बार अभ्यास करें।

आभामंडल का संतुलन

आभामंडल शुभ—अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। आभामंडल का मूल कारण है लेश्या। लेश्या भी शुभ—अशुभ दोनों प्रकार की होती है। छह लेश्याओं में प्रथम तीन लेश्याएँ—कृष्ण, नील, कापोत अशुभ और त्याज्य हैं। इनसे

असंतुलन पैदा होता है तथा आर्त्त—रौद्र ध्यान विकसित होता है। आर्त्त और रौद्र ध्यान से असंतुलन उत्पन्न होता है। शुभ ध्यान योग के माध्यम से संतुलन का विकास हो सकता है। लेश्या संतुलन का तात्पर्य है—अशुभ लेश्याओं का अभाव और शुभ लेश्याओं का अभ्यास। आचार्य महाप्रज्ञजी ने 'उत्तराध्ययन' के 35वें अध्याय के आमुख में लेश्या की व्याख्या करते हुए लिखा है—'लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। इसकी खोज जीव और पुद्गल के स्कंधों का अध्ययन करते हुए हुई। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। भोजन, पानी तथा अन्य द्रव्य से शरीर और भाव दोनों प्रभावित होते हैं। ये स्थूल पुद्गल हैं। ऐसे आभा, कांति, प्रभा या छाया पुद्गलों से प्रभावित होनेवाले जीव—परिणामों को भी लेश्या कहा गया है।''

सार—संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि आभामंडल के संतुलन के लिए भावों का संतुलन, मन—वाणी का संतुलन और बाह्य पदार्थों का भी संतुलन आवश्यक है, ताकि शरीर, मन, भाव एवं चित्त स्वस्थ और व्यवस्थित रह सकें। वैदिक परंपरा में सत्त्व, रजस, तमस के जो कार्य हैं, वे ही लेश्या के लक्षणों से तुलनीय हैं। सत्त्व, रजस और तमस को प्रकृति कहा गया है। पुरुष को चेतना कहा गया है। प्रकृति और पुरुष का संतुलन ही आभामंडल का संतुलन बन सकेगा। आभामंडल संतुलन से व्यक्ति में शांत, निर्मल, निश्छल, अहिंसक तथा सकारात्मक भावों का विकास होता है। ऐसा व्यक्ति ही स्वस्थ एवं अहिंसक समाज की रचना कर सकता है। इससे हिंसा तथा आसुरी शक्तियों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।

❑

अध्याय— 2

आभामंडल के रहस्यों की खोज

- आँखों की क्षमता
- आभामंडल और रोगोपचार
- रोगों के प्रकार
- धर्म और अध्यात्म में रुचिशील
- शक्ति और सत्ता के अधिकारी
- व्यवसायशील आभा

आभामंडल के रहस्यों की खोज

आभामंडल पर शोध का प्रारंभ सन् 1911 से माना जाता है। लंदन के सेंट थॉमस अस्पताल के डॉ. वाल्टर किलनर ने यह सोचकर कि क्या केवल महापुरुषों के ही आभामंडल होता है? यह कल्पना नहीं, यथार्थ हो। इस क्षेत्र में कुछ प्रयोग किए जाएँ। न्यूयार्क में एक घटना घटी। अस्पताल में एक रोगी की मृत्यु हो गई। उसके भाई को सूचित किया गया। भाई के आने में कुछ समय लगा। मृत शरीर को शवघर में रखा गया। शवघर में घुप्प अँधेरा था। कुछ समय पश्चात् उसका भाई आया। वह शव लेने जैसे ही शवघर में पहुँचा, उसने देखा, मृत शरीर के चारों ओर लगभग 6 इंच मोटी प्रकाश रेखाएँ झिलमिला रही थीं। रोगी का भाई डॉक्टर को इस घटना की सूचना देकर वापस लौटा। वह भाई के शव को काँच की खिड़की से देखने लगा। काँच काले थे। वह आँखें गड़ाकर देखने लगा। वह दृश्य देखकर हैरान रह गया। केवल रोशनी की लकीरें ही नहीं, अपितु अलग—अलग रंग भी दिखाई देने लगे। डॉ. वाल्टर किलनर भी देखकर हैरान रह गया। उसके पश्चात् अलग—अलग रंग के काँच द्वारा दृष्टि एकाग्र कर रोगियों को देखने लगे। जो व्यक्ति स्वस्थ होते, उनका आभामंडल झिलमिल रोशनीवाला होता। अस्वस्थ मनुष्य एवं मृत शरीरों के आभामंडल धुँधले और कमजोर होते। इस विधि को चिकित्सालय में स्वीकृत कर लिया गया।

आँखों की क्षमता

आँखों से देखते हैं। यह सामान्य कथन है। आँखें विशेष स्थितियों में ही देख सकती हैं। रोशनी बराबर नहीं हो तो आँखें देख नहीं सकतीं। मंद या तेज रोशनी में भी आँखें नहीं देख सकतीं। आँखें तब ही देख पाती हैं, जब तरंगमान 380—90 मिली.मी. कोण के आस—पास हो। ठीक इसके विपरीत उल्लू व बिल्ली की आँखों की बनावट भिन्न होती है। वह हमसे बिलकुल अलग ऋणात्मक तरंगमान चीजों को देखते हैं। गिद्ध ऊपर उड़ता हुआ नीचे मृत पशु के मांस—पिंड को देख लेता है। चमगादड़ भी रात्रि के सघन अंधकार में अपना शिकार खोज लेता है।

आभामंडल को देखने के लिए हलका प्रकाश, गोधूलि वेला अच्छा समय माना जाता है। हालाँकि आभामंडल को देखने के लिए आँखों को अनिमेष प्रेक्षा अथवा त्राटक अभ्यास दिया जाता है। आँखों की दृष्टि जब स्थिर होने लगती है तब मस्तक के चारों ओर श्वेत रश्मियाँ सी उभरने लगती हैं। व्यक्ति अपनी छाया पर 3 से 5 मिनट दृष्टि स्थिर रखे, फिर आकाश की ओर देखने से वह छाया स्पष्ट व तदाकार दिखाई देने लगती है। यह प्रतिबिंब सा लगता है। इस अभ्यास को धीरे—धीरे बढ़ाया जाता है। यह प्राचीन योग की विधि है। वैज्ञानिकों ने इसका विकास

किया।

यूरोपीय वैज्ञानिकों ने डॉ. वाल्टर किलनर की खोज को आगे बढ़ाते हुए कैंब्रिज विश्वविद्यालय के जीव—वैज्ञानिक आस्कर बैगनाल ने एक कोलतार जैसा द्रव्य तैयार किया, जिसे 'डायसियानाइन' कहा जाता है। इस घोल को एक कटोरी में डालकर उस पर टकटकी लगाकर देखते रहने के उपरांत अगर किसी व्यक्ति को छायावी उजाले में देखा जाए तो मस्तक के आस—पास आभामंडल की झलक आ जाती है। किरलीयन छायांकन (फोटोग्राफी) के द्वारा आभामंडल के फोटो भी खींचे जाते हैं। अब ऐसे विशेष कंप्यूटर के माध्यम से आभामंडल का विश्लेषण भी होने लगा है। साथ ही विभिन्न रोगों का निदान और विश्लेषण भी होने लगा है। विज्ञान की इस शाखा का तेजी से विकास हो रहा है। कुछ वर्षों में आभामंडल के ऐसे डॉक्टर भी उपलब्ध होने लगेंगे, जो आम रोगियों की चिकित्सा अन्य डॉक्टरों की तरह करने लगेंगे। उनकी विशेषता यह होगी कि वे आभामंडल को देखकर रोग आने से छह माह पहले ही रोग का उपचार कर देंगे।

आभामंडल और रोगोपचार

वस्तु हो या व्यक्ति, प्रत्येक का अपना आभा वलय होता है। यह आभा वलय जीवंत व्यक्ति में विकसित होता है। मृत्यु के पश्चात् धीरे—धीरे क्षीण हो जाता है। निर्माण और ध्वंस निरंतर चलता है। जड़ और चेतन दोनों परिवर्तनशील हैं। आभामंडल भी प्रतिक्षण बदलता रहा है। प्रत्येक पदार्थ की कालावधि पूर्ण होने पर उसका आभामंडल भी क्षीण हो जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति का जन्म, बचपन, जवानी, बुढ़ापा आकर अंत में मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार पदार्थ का भी उत्पन्न होना, जीर्ण होना, मरण होना उसका सहज स्वभाव है। बचपन, जवानी और बुढ़ापे के बीच भी बीमारी आती हैं। उस बीमारी के समय आभामंडल कमजोर और भद्दा हो जाता है। उसका उपचार या आभामंडल को निर्मल किया जाता है, जिससे व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। यह शरीर जिन तत्त्वों से बना है, वे तत्त्व—वात, पित्त और कफ के रूप में जाने जाते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि कोशिकाओं के समूह से यह शरीर निर्मित हुआ है। पदार्थ भी संयोग से निर्मित होते हैं। उनका भी अपना आभा वलय होता है। एक दिन वह क्षीण होकर नष्ट हो जाता है। जड़ और चेतन दोनों में यह प्रक्रिया चलती रहती है।

रोगों के प्रकार

रोगों के मुख्यत: चार प्रकार हैं—शारीरिक रोग, मानसिक रोग, भावनात्मक रोग और कर्मजन्य रोग। सारे रोगों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। शारीरिक रोगों का इलाज शरीर के स्तर पर किया जाता है। शरीर से निकलनेवाली आभा की किरणें बाहर जिस रूप से प्रस्फुटित होती हैं, जो शरीर के अत्यधिक निकट प्रकाश लहर होती है, उसमें धुआँ अथवा मैलापन होता है। उसे संकल्प एवं स्वयं की भावना तथा आभा से निर्मल बनाकर शारीरिक रोग दूर किया जाता है। उसमें जो मलिनता का तत्त्व है, उसे मंत्र, वस्तु अथवा औषधि से भी वात, पित्त, कफ को संतुलित किया जाता है।

मानसिक रोग

मानसिक रोगों की पहचान सामान्यत: व्यक्ति के चेहरे को देखकर की जा सकती है। उसकी आवाज, उसके हाव—भाव से भी कुछ पहचान हो सकती है। चित्तवृत्ति (मूड) से भी व्यक्ति की मानसिक स्थिति का आकलन किया जा सकता है। उसके चाल—चलन से भी पता चल सकता है। रंग की पसंद से भी वात, पित्त और कफ की प्रकृति

का पता चल सकता है। लिखावट से भी व्यक्ति की मानसिक स्थिति की जानकारी हो सकती है। उसके व्यवहार से भी मानसिक स्थिति का पता लगता है। मोटा, ठिगना, लंबा, पतला आदि शारीरिक बनावट से भी व्यक्ति के मानस का पता लगाया जा सकता है।

मानसिक रोगियों की चिकित्सा में रंगों का ध्यान उपयोगी है। रंग केवल रंग ही नहीं, उनकी अपनी तरंगें होती हैं। तरंगों का अपना प्रभाव होता है। उनका मापन भी किया जाता है। कौन सा रंग कितनी फ्रीक्वेंसी से बनता है, उसका क्रम वैज्ञानिकों ने इस रूप में रखा है—

रंग: लाल
तरंग दैर्घ्य: 7,400 से 6,200
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 4,000 से 5,000 खरब

रंग: नारंगी
तरंग दैर्घ्य: 6,200 से 5,850
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 5,000 से 5,400 खरब

रंग: पीला
तरंग दैर्घ्य: 5,850 से 5,650
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 5,400 से 5,500 खरब

रंग: हरा
तरंग दैर्घ्य: 5,650 से 5,000
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 5,500 से 6,000 खरब

रंग: नीला
तरंग दैर्घ्य: 5,000 से 4,450
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 6,000 से 6,600 खरब

रंग: जामुनी
तरंग दैर्घ्य: 4,450 से 4,350
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 6,600 से 6,750 खरब

रंग: बैंगनी
तरंग दैर्घ्य: 4,350 से 3,900
कंपन आवृत्ति/सेकंड: 6,750 से 7,600 खरब

धर्म और अध्यात्म में रुचिशील

धर्म और अध्यात्म में रुचिशील व्यक्ति का आभामंडल बैंगनी और पीले रंगवाला होता है। धर्म एवं आराधना करनेवाले स्वयं दूसरों को प्रेरित करते हैं। ऐसे व्यक्ति संगठन को शक्ति प्रदान करते हैं, साथ ही नया संगठन भी खड़ा कर सकते हैं। इसमें भी काली छाया या धब्बे हों तो ये व्यक्ति प्रतिक्रियास्वरूप अपने संगठन में बाधा डाल सकते हैं। समाज में बखेड़ा भी कर सकते हैं। बौद्धिक एवं अध्यात्म में रुचिशील व्यक्तियों की आभा नीली

चमकती हुई होती है। कत्थई और भूरे रंग की आभावाले व्यक्ति सामान्य जीवन—यापन करनेवाले होते हैं। सुनहरी, गुलाबी और श्वेत रंग की आभावाले व्यक्ति रचनात्मक वृत्तिवाले होते हैं। वे जिस भी कार्य में हाथ डालते हैं, उनको सफलता हासिल होती है। वे परिश्रमी और धुन के धनी होते हैं।

आभामंडल की पहचान के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति किस मूड या परिस्थिति में आपसे मिलने आया है। आभामंडल वर्तमान में ही देखा जाता है। आभामंडल देखते समय व्यक्ति की स्थिति का बोध भी आवश्यक है। आभामंडल के परीक्षक को सावधानी और जागरूकता से आभामंडल का निरीक्षण करना होता है। उसकी घोषणा विवेक से करें। सभी बातें जानी जा सकती हैं, लेकिन कही नहीं जा सकतीं; क्योंकि हम सर्वज्ञ नहीं हैं।

शक्ति और सत्ता के अधिकारी

आभामंडल केवल रंग ही नहीं है। उसके विविध रूप हैं। उससे व्यक्तित्व की पहचान होती है। साथ ही व्यक्ति किस व्यवसाय बुद्धिवाला है, इसकी पहचान भी की जा सकती है। पर इतना सरल नहीं है किसी व्यक्ति की प्रकृति और उसकी रुचि को पहचानना। दुनिया में असंख्य व्यक्ति हैं। उनकी पहचान करना कितना कठिन है। फिर भी, आभामंडल के पारखी इसे जानने की कोशिश करते हैं। जिन व्यक्तियों की आभा चमकीली लाल रंग की होती है, वे नेतृत्व करनेवाले होते हैं। राजनीति या सत्ता पर उनकी अपनी पकड़ होती है। ऐसे व्यक्ति सेना, पुलिस एवं सार्वजनिक कार्यों में अधिक रुचिशील होते हैं। यदि व्यक्ति का आभामंडल लाल, मटमैला, छाया—युक्त आभावाला होता है तो वह व्यक्ति सत्ता का दुरुपयोग करनेवाला होता है।

व्यवसायशील आभा

हरी चमकीली आभा व्यक्ति के व्यवसायशील चरित्र को अभिव्यक्त करनेवाली आभा है। वे व्यक्ति अपने कौशल से बड़े व्यवसाय व प्रतिष्ठानों का संचालन करनेवाले होते हैं। यदि इनके आभा वलय में काली परिच्छाया साथ में हो तो ये धोखाधड़ी करनेवाले और शोषण करनेवाले होते हैं।

❑

अध्याय—3

कैसे परखें आभामंडल को?

- आभामंडल रंगीन प्रकाश—रश्मियाँ हैं।
- सूर्य का प्रकाश प्रति सेकंड 1,86,282 मील चलता है।
- प्रकाश, अँधेरा और छाया तीनों मिलकर जादू का दृश्य पैदा करते हैं।
- आभामंडल के अनुभव का प्रयोग प्रात: और सायं हलके प्रकाश में ही सहज होता है।
- दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र) पर ध्यान के अभ्यास से सहज अंतर्दृष्टि जाग्रत् होती है।

कैसे परखें आभामंडल को?

आभामंडल रंगीन प्रकाश रश्मियाँ हैं। प्रकाश क्या है? प्रश्न सामने आते ही सूरज की रोशनी का ध्यान आ जाता है। सूर्य एवं सूर्य की रोशनी केवल प्रकाश ही नहीं, विभिन्न ऊर्जाओं से भरा शक्तिशाली विशाल पिंड है। ऊर्जा प्रत्येक पदार्थ में होती है। इसका प्रकटीकरण प्रकाश, ताप आदि विभिन्न रूपों में होता है। प्रकाश में केवल रोशनी ही नहीं बल्कि गति भी है। सूर्य का प्रकाश प्रति सेकंड 1,86,282 मील चलता है। सूर्य किरणों को काँच से एकत्रित कर रुई या कागज पर केंद्रित करते हैं तो वह रुई जलने लगती है। जलने की इस क्रिया से पता लगा कि सूरज की किरणों को एकत्रित करने से जलने की शक्ति पैदा हो गई। इन्हीं किरणों को प्रिज्म काँच से गुजारें तो सात रंग प्रकट होते हैं। सूर्य किरणों में सभी रंग हैं। इनमें प्रकाश एवं ताप का ही बाहुल्य है। इन्हीं किरणों से दूब हरी दिखाई देती है। सूरजमुखी के फूल पीले और अन्य फूलों में विभिन्न रंग दिखाई देते हैं। इसका मूल कारण सप्तरंगी प्रकाश है। दूब शेष रंगों को अवशोषित कर हरे रंग को प्रकट करती है, अर्थात् सिर्फ हरे रंग को परावर्तित कर देती है।

आभामंडल में उपस्थित रंगों की रश्मियों का प्रकटीकरण भी प्रकाश किरणों के कारण है। आभामंडल को देखना और उसकी व्याख्या करना भी साधना है। शरीर के भीतर से निकलनेवाली आभा रश्मियाँ भीतरी कारण हैं, फिर बाहर के निमित्तों से इनकार नहीं किया जा सकता। किसी दूसरे व्यक्ति की आभा देखने से पहले स्वयं के आभामंडल को देखने का प्रयास करना होता है। आभा को विकसित करने के लिए प्रकाश ऊर्जा की अत्यंत आवश्यकता होती है। प्रकाश ऊर्जा के आधार से ही आभामंडल की रश्मियाँ सक्रिय होती हैं। आभामंडल की रश्मियों को परखने के लिए आँखों की पुतलियों को स्थिर कर व्यवस्था देनी होती है।

प्रकाश का संतुलन आभा में सहयोगी

प्रकाश, अँधेरा और छाया—तीनों मिलकर जादू का दृश्य पैदा करते हैं, वस्तुओं को अदृश्य कर देते हैं। अदृश्य वस्तुओं को प्रकट कर दर्शकों को चमत्कृत किया जाता है। अँधेरे में वस्तुएँ दिखाई नहीं देतीं; पर प्रकाश पड़ते ही दृश्यमान हो जाती हैं। जैसे रेगिस्तान में बालू—ही—बालू है, लेकिन जब उस बालू के टीलों पर प्रकाश पड़ता है तो वहाँ पानी छलकता दिखाई देता है। यह भ्रम है। हमें भी ऐसा लगता है। बेचारे मृग की हालत तो खराब हो जाती है। प्यासा मृग रेत के टीलों में पानी समझकर दौड़—दौड़कर प्राण गँवा देता है। इसे 'मृग मरीचिका' कहा जाता है। यह प्रकाश का ही प्रतिबिंब है, जिससे यह अनुभव होता है कि पानी का सागर लहरा रहा है। मृग को क्या, मनुष्यों को भी पानी का अनुभव होता है।

आभा शरीर के निकट एक आवरण के रूप में अनुभव होती है। यह वस्तुत: आभामंडल नहीं, बल्कि शरीर के पास इथरिक (Etheric) छाया है। आभामंडल की प्रकाश किरणें शरीर से थोड़ी दूर शरीर छाया से मिलती हुई दिखाई देती हैं। अत: आभामंडल का पारखी अच्छी तरह से देखे कि आभामंडल की प्रकाश—रश्मियाँ इथरिक शरीर से भिन्न चमकदार होती हैं। आभामंडल को देखने के दो तरीके हैं—पहला, त्राटक या अनिमेष प्रेक्षा से आँखों की पुतलियों को स्थिर कर उसमें से फूटनेवाली तरंग, रश्मियों सी चमकदार आभा वलय में दिखाई देती है; दूसरा प्रकार है—भ्रू—मध्य में अनुभव होनेवाले नाड़ी स्पंदन के साथ तदाकार अनुभव कर उस स्थान पर मानसिक एकाग्रता बढ़ाकर तीसरे नेत्र को जाग्रत् करने का अभ्यास करें। यह त्रिकुटि का स्थान भी है। ज्यों ही किसी व्यक्ति के शरीर या आज्ञाचक्र पर चित्त को एकाग्र करते हैं तो सहज ही आभास होता है कि यह व्यक्ति किस स्थिति का है। उसका आभामंडल कैसा है? उसमें क्या कमियाँ हैं? कौन से रोग हैं, अर्थात् कौन सा अंग दुर्बल है?

तीसरा प्रकार है—किसी व्यक्ति का निदान करना हो तो उसे सामने खड़ा कर आँखें बंद करवाएँ। वह श्वास का रेचन करे तो आप पूरक करें। श्वास के साथ तादात्म्य होते ही उसके शरीर के साथ तादात्म्य अनुभव करें। उसका शरीर और मेरा शरीर एक ही है। सामनेवाले के शरीर में जो भी, जहाँ भी समस्या होगी, स्वयं के शरीर में अनुभव होने लगेगी। उसकी वेदना या पीड़ा आप स्वयं अनुभव करेंगे। प्रयोग करते—करते निपुणता आने लगेगी। धैर्य से काम करते जाएँगे तो एक दिन सफलता आपके द्वार खटखटाएगी। मानस त्राटक, त्रिकुटि दर्शन, भृकुटि मध्य एकाग्रता, दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र) पर ध्यान के अभ्यास से सहज अंतर्दृष्टि जाग्रत् होती है। यह कल्पना नहीं, यथार्थ है। अनेक घटनाएँ इस वास्तविकता की साक्षी हैं।

आभा—दर्शन का अनुभव मंद प्रकाश में

आभा—दर्शन के लिए प्रकाश कितना और किस ओर से शरीर पर पड़ता है, इसका भी खयाल रखना होता है। आभामंडल के अभ्यासी को कमरे में प्रकाश की व्यवस्था इस प्रकार से करनी चाहिए कि आभामंडल आसानी से पकड़ में आ सके। अधिक प्रकाश आभामंडल को तिरोहित कर देता है। अंधकार में आभामंडल की रश्मियाँ दिखाई नहीं देतीं, इसलिए मंद प्रकाश व्यवस्था की अपेक्षा रहती है। आभामंडल देखने का तात्पर्य उस व्यक्ति के शरीर को ही नहीं देख रहे हैं, अपितु उसके भाव कैसे चल रहे हैं, विचारों की शृंखला किस रूप से प्रवाहित हो रही है, यह भी देख रहे हैं। प्रयोक्ता का अपना आभामंडल भी दूसरे के आभामंडल को प्रभावित करता है। अत: उसके निकट इतने न आ जाएँ कि आपका आभामंडल मिलकर सामनेवाले आभामंडल की कमी और विशेषताओं को लील जाए। इस स्थिति में सही निर्णय नहीं लिया जा सकेगा। आभामंडल का निरीक्षण आत्मनिरीक्षण से भी कठिन है। आत्मनिरीक्षण में अपनी वृत्तियों को देखनेवाला स्वयं की वृत्तियों को देख रहा है। देखनेवाला तटस्थ होकर अवलोकन कर रहा है। इस परिस्थिति में उसे जो अनुभव होता है, वह बिलकुल स्पष्ट और साफ होता है। स्वयं के आभामंडल को भी देख पाएँगे। आभामंडल के अनुभव का प्रयोग प्रात: एवं सायं हलके प्रकाश में ही सहज होता है।

अब आभामंडल के कंप्यूटराइज कैमरे भी उपलब्ध हो गए हैं, जिससे आभामंडल को कंप्यूटर के परदे पर सहज देखा जा सकता है। ऐसी मशीन भी बाजार में उपलब्ध हो गई है, जिससे पता लग सकता है कि कौन से अंग में समस्या है? वहाँ का आभामंडल विकृत व भद्दे रंग को प्रकट कर रहा है। मशीन बता तो देगी, किंतु उसका विश्लेषण तो विशेषज्ञ ही कर पाएगा। उसके निराकरण में कौन सा प्रयोग करें या आभामंडल के रंगों में कैसे परिवर्तन करें? आभामंडल लेश्या की अभिव्यक्ति दे रहा है। उसका भाव तंत्र कितना विकृत है? भाव तंत्र के पीछे अध्यवसाय है। चेतना की आंतरिक स्थिति पर कर्मों के उदय (प्रकटीकरण) कर्मों का क्षयोपशम भाव अर्थात्

निर्मलता होती है। कर्म उदय से अध्यवसाय मलिन और क्षयोपशम से निर्मल होते हैं। चेतना की निर्मलता के बढ़ने से आधि, व्याधि, उपाधि का विलय होता है।

आभामंडल का प्रशिक्षण

मध्यम प्रकाश से आभामंडल को सहज ग्रहण करने में सुविधा रहती है। तेज प्रकाश में वह खो जाता है। प्रकाश—विहीन स्थिति में कुछ भी अनुभव नहीं होता। ध्वनि विशेषज्ञ डॉ. ग्राहम बेल ने 'ध्वनि शून्य कक्ष' में टेलीफोन का प्रयोग किया। उत्तर में आनेवाली ध्वनि दस गुना तेज होकर लौटने लगी। जब कक्ष को प्रकाश—विहीन कर दिया गया तो ध्वनि इतनी मंद हो गई कि उसका सुनाई देना ही बंद हो गया। प्रकाश के अभाव में ध्वनि तरंगों की ऐसी स्थिति बन गई। आभामंडल के दर्शन को वातावरण भी प्रभावित करता है। शांत और निर्मल वातावरण में एकाग्रता, प्रसन्नता एवं अंत:स्फुरण सहज होती है। चिंतन और अभ्यास सहज होता है। कोलाहल, विषाद, तनावपूर्ण वातावरण में प्रशिक्षण कठिन होता है। प्रशिक्षणार्थी सात्त्विक वृत्तिवाला हो, खान—पान में संतुलन हो, व्यवहार में मृदु और मिलनसार हो तो वह सहजता से आभामंडल का ग्राहक हो सकता है। प्रशिक्षण वृत्ति का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पड़े बिना नहीं रह सकता। सात्त्विक, शांत और संयमी व्यक्ति को देखकर आभामंडल की किरण सहज विकिरित होने लगती है।

आभामंडल को देखने से पहले प्रशिक्षक में एकाग्रता का विकास, धैर्य और सात्त्विक वृत्ति के निर्माण के लिए कुछ आवश्यक अभ्यास प्रयोग भी हैं, जिसका वर्णन आगे किया गया है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि आभामंडल को प्रकाश की रश्मियों के परिपे्रक्ष्य में अनुभव किया जा सकता है। प्रशिक्षक सतत अभ्यास तथा प्रशिक्षण के माध्यम से इसके रहस्य को जान सकता है।

❑

अध्याय—4

कैसे करें आभामंडल का अनुभव?

- मंत्र प्राण चेतना से संबंधित ऊर्जा है।
- आभा वलय व्यक्ति की भावना के अनुरूप कार्य करता है।
- सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान एवं शील के मार्ग पर चलने और अंत:करण के दोषों को दूर करने से इस शरीर में वह महान् ज्योति दृष्टिगोचर होती है।
- सिद्धों के आभामंडल नहीं होता। वे अरूपी हैं। उनके कर्म भी नहीं हैं।

कैसे करें आभामंडल का अनुभव?

मंत्र ध्वनि तरंगों का एकीकृत रूप है। मंत्र प्राण चेतना से संबंधित ऊर्जा है। मंत्र शक्ति का प्रयोग भारतीय दर्शन, संस्कृति और संस्कारों से जुड़ा हुआ है। यहाँ जन्म संस्कार भी मंत्र द्वारा किया जाता है। बालक के जन्म के समय संस्कारी माँ बच्चे के कान में 'ॐ अर्हम्' मंत्र का संप्रेषण करती हैं। इससे बालक के मस्तिष्कीय तंतु अधिक सक्रिय होते हैं, बालक की समझ अधिक विकसित होती है। नामकरण में भी मंत्र आदि द्वारा संस्कारित किया जाता है।

भगवान् ऋषभ के पुत्र चक्रवर्ती भरत के समय श्रावकों की पहचान के सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य के प्रतीक तीन सूत्र धागों का उपयोग किया जाता था। ब्राह्मण—पुत्रों, पुरोहितों को 'द्विज' कहा जाता है। जनेऊ द्वारा शुद्धता का ध्यान किया जाता था। इसके विशिष्ट मंत्रों से उनकी चेतना का ऊर्ध्वारोहण किया जाता है। वह संकल्प करता है—'सुमनसा स्याम्', अर्थात् हे प्रभो! मैं सदा प्रसन्न मनवाला बनूँ। मंगल भावना में—'श्री सम्पन्नोऽहं स्याम्', ऐसे ही ह्र, धी, धृति, शक्ति, शांति, नंदि, तेज:, शुक्ल सम्पन्नोऽहं स्याम्' आदि भावना से अपने आपको भावित करने का संकल्प है।

व्यक्ति जैसा संकल्प करता है, उस रूप में वह स्वयं रूपांतरित होने लगता है। मंत्र ध्वनि तरंगों के माध्यम से आभा वलय बनता है। आभा वलय व्यक्ति की भावना के अनुरूप कार्य करता है। 'भगवद्गीता' में कहा गया है—'प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योऽपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते॥' प्रसन्नता की भावना से समस्त दु:खों का नाश होता है। प्रसन्न रहनेवाले की बुद्धि स्थिर होती है और उसका मन ध्यान में लगने लगता है।

'अर्हम्' के जाप से भी आभामंडल विकसित होता है। 'अर्हम्' भी 'ॐ' के सदृश शक्तिशाली है। अर्हम् अक्षरात्मक है। ॐ चित्रात्मक है। चित्र में अर्थ को नियोजित करना होता है। अर्हम् स्वयं ध्वनि तरंगों से तरंगित होकर कार्य करता है। ॐ के उच्चारण में मृदुता है। अर्हम् के उच्चारण में शक्तिशाली ऊर्जा ध्वनि तरंगें प्रस्फुटित होती हैं।

आभामंडल आता कहाँ से है?

एक छोटा बालक गुरुजी की कुटिया में दीपक रखने जा रहा था। संध्या का समय था। अँधेरा चारों ओर उतर आया था। गुरुजी रास्ते में ही मिल गए। बालक ने गुरुजी को प्रणाम किया। आशीर्वाद देते हुए गुरुजी थोड़े झुके, दीपक पर फूँक मारी और दीपक बुझ गया।

''वत्स, यह रोशनी कहाँ गई?''

बालक एक क्षण रुका और बोला, ''जहाँ से आई थी, वहीं चली गई।''

गुरुजी उत्तर से संतुष्ट थे और शिष्य भी मौन था। गुरुजी ने जो पूछा और शिष्य ने उसका जो उत्तर दिया, वह आज ही कह रहा है कि आभामंडल कहाँ से आता है और कहाँ विलीन हो जाता है? आभामंडल के रहस्य को खोजने के लिए अपनी अंतर्दृष्टि को जाग्रत् करना होता है। यह जागृति बातों से नहीं होती है। सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान एवं शील के मार्ग पर चलने और अंत:करण के दोषों को दूर करने से इस शरीर में वह महान् ज्योति दृष्टिगोचर होती है।

आत्मा से साक्षात्कार के लिए वन, पहाड़, गुफा या तीर्थस्थान में जाने की जरूरत नहीं। जैसे तिलों में तेल, दही में मक्खन, मिट्टी में सोना, आरणी की लकड़ी में अग्नि रहती है, वैसे ही आत्मा में आभा रहती है। चित्त की निर्मलता से, भावधारा की विशुद्धि से, दृष्टि के अभ्यास से आभामंडल दिखाई देने लगता है।

सवाल जनक का, उत्तर याज्ञवल्क्य का

महाराजा जनक एक बार महर्षि याज्ञवल्क्य के सत्संग में बैठे थे। महाराजा जनक ने प्रश्न किया—मनुष्य किस ज्योति से देखता है?

महर्षि याज्ञवल्क्य मुसकराए, यह क्या सवाल कर रहे हैं? फिर भी उत्तर तो देना ही था—प्रत्येक व्यक्ति दिन में सूर्य की ज्योति से देखता है।

जब सूर्य न हो, तब?

चंद्रमा की ज्योति से देखता है।

जनकजी ने फिर प्रश्न किया—चंद्रमा न हो, तब?

महर्षि ने जवाब दिया—अग्नि की ज्योति से।

अग्नि भी न हो, तब किससे देखता है?

वाणी, स्वर से। रात्रि के गहन अंधकार में एक यात्री रास्ते से भटक गया। उसने कहा—मुझे मार्ग बताओ। आवाज आई—आप इधर आ जाओ। आवाज के अनुसार वह चलकर उस ओर पहुँच जाता है।

वाणी—आवाज भी नहीं हो, तब?

व्यक्ति स्वयं की आत्मा के विवेक से मार्ग को तय करता है।

जनकजी का फिर सवाल था—आत्मा क्या है? उसका निवास—स्थान कौन सा है?

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा, ''योऽयं विज्ञानमय: प्राणेशुह्यंत ज्योति: पुरुष:।'' जो यह विज्ञानमय प्राणों का संचार करता हुआ हृदय में ज्योति—स्वरूप पुरुष आत्मा है।

भगवान् महावीर को जब कैवल्य ज्ञान हुआ, उस समय वह आत्मा के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कहते हैं, 'एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसण संजओ, सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्खणा', अर्थात् एक आत्मा शाश्वत है। वह ज्ञान और दर्शन से संयुक्त है। शेष बहिर्भाव है। सब संयोग लक्षणवाले हैं।

नचिकेता—आत्मा के स्वरूप के संबंध में 'नेति, नेति, नेति' कह समझ सका।

आत्मा के संबंध में गौतम बुद्ध से पूछा गया—क्या आत्मा है? कहा नहीं जा सकता। आत्मा नहीं है, यह भी नहीं कहा जा सकता। आत्मा है—यह अवक्तव्य है। बताया नहीं जा सकता। भगवान् महावीर से पूछा गया—आत्मा है? उन्होंने कहा, ''आत्मा है।'' फिर प्रश्न पूछा गया, ''उसे दिखाएँ, वह कहाँ है?''

भगवान् महावीर ने कहा, ''आत्मा को इन आँखों से नहीं दिखाया जा सकता है; क्योंकि आत्मा में न रूप है, न गंध है, न स्पर्श है। आत्मा अरूपी सत्ता है।'' अस्तित्व है, तब आत्मा को कैसे देखा जा सके? आत्मा को अनुभव किया जा सकता है। उसकी क्रिया से हम सदैव परिचित हैं। आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया जाए। वह प्रत्यक्ष है, आत्मा है। उसका साक्षात्कार अनुभव करने की प्रक्रिया है। जो आत्मा है, वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है, वह आत्मा है।

भगवान् महावीर का अमृत वचन है—''जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।'' आत्मा में जो ज्ञानात्मक क्षमता है, वह चेतना में है। अचेतन निर्जीव में ज्ञान नहीं। अस्तित्व तो उसका भी है। अस्तित्व है, अस्तित्व से कोई इनकार नहीं कर सकता। अस्तित्व जड़ और चेतन दोनों का है।

भगवान् महावीर ने पंचास्तिकाय का निरूपण किया है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय काल औपचारिक द्रव्य हैं, काल्पनिक हैं। काल सदैव वर्तमान में रहता है। वर्तमान का राग—द्वेष के बिना अनुभव ही वीतरागता का अनुभव है। केवल जीवास्तिकाय का ही अनुभव नहीं होता, प्रत्येक अस्तिकाय का भी अनुभव होता है, क्योंकि अस्तित्व सबका गुण है। अस्तित्व के बिना कोई वस्तु टिक नहीं सकती। आत्मा है, उसके कर्म हैं, इसलिए आभामंडल भी है। सिद्धों के आभामंडल नहीं होता। वे अरूपी हैं। उनके कर्म भी नहीं हैं, कषाय और भाव नहीं हैं। इसलिए आभामंडल होने का कारण नहीं।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् दर्शन को आत्मसात् करके आभामंडल का अनुभव किया जा सकता है।

❑

अध्याय— 5

आभामंडल से पहचानें मानसिक रोग

● शरीर में रोग उत्पत्ति का कारण वात, पित्त और कफ का असंतुलन है।

● स्वस्थ व्यक्ति का आभामंडल चमकीला और प्राणवान् होता है।

● आभामंडल के बढ़ते प्रभाव की जानकारी ज्यों—ज्यों बढ़ती जाएगी, समस्याओं का समाधान सहज व सरल होता जाता है।

● सरल चित्त और सहज भाववाला व्यक्ति आभामंडल का अवलोकन कर सकता है।

आभामंडल से पहचानें मानसिक रोग

शरीर स्थूल है, उस पर उतरनेवाला रोग स्पष्ट पहचान में आता है। रोग आने पर उसका उपचार किया जाता है। रोग शरीर पर उतरे नहीं, उससे पहले आभामंडल से पहचानकर रोगी को उससे मुक्त रखा जा सकता है। ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व यह खोज लिया था। यहाँ तक कि उसकी मृत्यु के समय जो लेश्या होती है, भाव धारा वैसी होती है। उसके अनुसार ही उसका जन्म निश्चित होता है। 'अंत मति सो गति।' जैसी अंतिम समय बुद्धि होती है, उसके अनुसार उसकी गति अर्थात् अगला जन्म होता है। आम जनता में प्रचलित यह लोकोक्ति सच्चाई को अभिव्यक्ति दे रही है। मन और भाव से बीमार होना तो और अधिक खतरनाक है। शरीर को तो पकड़ा जा सकता है, किंतु मन और भाव तो अधिक सूक्ष्म होते हैं। दोनों आभामंडल के घेरे से बाहर नहीं हैं। आभामंडल में शरीर, मन और भाव का रंग भी उभरता है। कुशल आभामंडल परीक्षक उसका अच्छी तरह से विश्लेषण कर सकता है।

महर्षि चरक ने बताया है कि शरीर में रोग उत्पत्ति का कारण वात, पित्त और कफ का असंतुलन है। असंतुलन को संतुलित कर रोग को दूर किया जा सकता है। असंतुलन के हजार प्रकार हैं। वात, पित्त और कफ के तीनों प्रकारों से रोगों के असंख्य प्रकार हो जाते हैं। उनको संतुलित करने के भी असंख्य प्रकार हैं। महर्षि चरक ने जिस अतींद्रिय क्षमता से अपने मस्तिष्क को अनुसंधानशाला बनाकर, जड़ी—बूटियों से संवाद कर उनके गुणों को जाना और समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया, वह अपने आप में आश्चर्य है। वर्तमान में हजारों—हजार अनुसंधान केंद्र तथा मापने के सूक्ष्मतम यंत्र हैं। हजारों पढ़े—लिखे लोग शोध में लगे हुए हैं। पेड़—पौधे की आभा को पहचानकर उनसे संवाद कर उनके दोष और गुणों को पहचान सकते हैं। किसी पौधे को, जो स्वस्थ हो, दीवार से 6 इंच दूर रखकर उसे ध्यान से देखें कि उसका आभामंडल कैसा है। प्रत्येक पत्ती के चारों ओर सफेद धार सी दिखाई देती है। इसे और स्पष्ट देखने के लिए छोटे पात्र में स्वच्छ जल अथवा दर्पण में इसकी परिच्छाया को देखें। हम प्रत्येक पत्ते के साथ चमकती परिच्छाया देखकर हैरान हो जाते हैं। उसी पानी में चुंबक डाल दें तो आभा को चुंबक खींचकर अपने में समेट लेता है। मनुष्य के आभामंडल को परखना जटिल है। पेड़—पौधे के आभामंडल को देखकर, उनकी परीक्षा कर स्वयं का आत्मविश्वास जब जाग जाता है, तब मनुष्य के आभामंडल की परीक्षा करने का प्रयास करना चाहिए।

अस्वस्थ व्यक्ति का आभामंडल कमजोर होता है। स्वस्थ व्यक्ति का आभामंडल चमकीला और प्राणवान् होता है। एक—दूसरे के प्रति आकर्षित व्यक्तियों का आभामंडल चमकदार और रंग भी सुंदर होता है। पति—पत्नी के आभामंडल में समरसता और सामंजस्य होता है। अपरिचित और शंकाशील स्त्री—पुरुषों का आभामंडल बिखरा—

बिखरा और भद्दा दिखाई देता है। ऐसा शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विभेद के कारण होता है। जिनके मानस भाव में एकरूपता होती है, उनका आभामंडल समरसता और सुंदरता लिये हुए होता है।

कुछ लोगों के मन में यह संदेह है कि आभामंडल को सिद्ध पुरुष या योगी लोग ही देख सकते हैं या पढ़े—लिखे वैज्ञानिक लोग ही इसे देख पाते हैं। ऐसा कुछ नहीं है। अनिमेष प्रेक्षा या त्राटक का अभ्यास आधा घंटा या तीन—चौथाई घंटा हो जाने से आभामंडल सिर के पीछे दिखाई देने लगता है। इसका विश्लेषण और चिकित्सा सबंधी विज्ञान वर्षों के अभ्यास से आता है। सरल चित्त और सहज भाववाला प्रशिक्षक शीघ्र आभामंडल का अवलोकन कर पाता है। बुद्धि तो विश्लेषण में काम आती है, जिससे आभामंडलवाले व्यक्ति का चरित्र कैसा है, उसकी जीवन—शैली कैसी है? आदि का अध्ययन होता है।

आभामंडल की पहचान के लिए रंगों के सम्मिश्रण की समझ स्पष्ट होनी चाहिए। कौन सा रंग किस रंग के साथ मिलकर कैसा रंग बनाता है, यह स्पष्ट होता है। तब वह तत्काल बता सकता है कि किस रंग के मिश्रण से इनकी आभा में ऐसा रंग बना है। साथ ही कुछ महिला—पुरुष रंगीन वस्त्र पहने हुए होते हैं। उनकी आभा से निकलनेवाले रंगों का विश्लेषण करना कठिन होता है। फिर भी, कुशल विश्लेषक उनका सहजता से विश्लेषण कर लेता है।

कुछ व्यक्ति खान—पान में सबकुछ खाने की मनोवृत्तिवाले होते हैं। तामसिक भोजन करनेवाले और नशे में धुत रहनेवाले व्यक्तियों में आभामंडल का सही विश्लेषण करने की क्षमता कम पाई जाती है। वे विश्लेषण गलत कर सकते हैं।

एकाग्रता का पहला प्रकार—निस्पृह वृत्ति

विश्लेषण के लिए मन की एकाग्रता के साथ निस्पृह वृत्ति चाहिए। निस्पृह वृत्ति के बिना किया गया विश्लेषण सही नहीं होता है। एकाग्रता के लिए कुछ चार्ट बनाने होते हैं, जिसमें पाँच में स्टार, पाँच में चार बिंदु, पाँच में चौकोर ईंट के सदृश पाँच आकार तथा किसी में केवल एक बिंदु ही होता है। इस तरह 20 चार्ट हो जाते हैं। वे बाहर से एक जैसे ताश के पत्तों के सदृश होते हैं। सब मिले हुए कार्डों को एक साथ रखकर, आँखें बंद रखकर बताएँ कि पहला कार्ड कौन सा, दूसरा कौन सा, तीसरा कौन सा, चौथा कौन सा है? ऐसा पाँच बार करें। उसके पश्चात् प्रतिशत निकाल लें। आप में कितनी एकाग्रता है, यह इसका माप है।

एकाग्रता का दूसरा प्रकार—अनिमेष प्रेक्षा (त्राटक)

सफेद कागज पर काले रंग का एक छोटा सा बिंदु बना दें। उस बिंदुवाले कागज को दीवार पर चिपकाएँ। उससे 2 फीट की दूरी पर बैठकर अनिमेष प्रेक्षा का अभ्यास करें। काले बिंदु पर एकटक अपनी नजर को टिकाएँ। प्रारंभ में एक मिनट, दूसरे सप्ताह में दो मिनट, तीसरे सप्ताह में तीन मिनट, चौथे सप्ताह में 5 से 10 मिनट, आधा घंटा तक बढ़ा सकते हैं। आँखें अपने आप जब बंद हो जाएँ, तब दर्शन केंद्र पर (आज्ञाचक्र—दोनों भृकुटियों के मध्य) एकाग्र हो जाएँ, फिर जो कुछ घटित हो रहा हो, उसके साक्षी बनें। प्रिय दृश्य भी आ सकते हैं, अप्रिय दृश्य भी आ सकते हैं। दोनों दृश्यों में तटस्थ रहें। वर्तमान जीवन के दृश्य व घटनाएँ आ सकती हैं, अतीत की घटनाएँ भी आ सकती हैं। कभी—कभी भविष्य में होनेवाले दृश्य भी प्रतिबिंबित हो सकते हैं। मात्र एक ही शर्त है कि व्यक्ति प्रयोगों की निरंतरता बनाए रखे। संदेह हो तो लेखक से संपर्क कर समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

एकाग्रता का तीसरा प्रकार—श्वास प्रेक्षा

श्वास—नि:श्वास जीवन से जुड़े हुए हैं। श्वास ऐसी घटना है, जो विद्यमान है; किंतु उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है। श्वास निरंतर आता है। चाहे—न—चाहे वह रुकता नहीं है। श्वास सहज क्रिया है, उस पर चित्त को केंद्रित किया जा सकता है। श्वास को दीर्घ या अनुलोम—विलोम के अनुसार लिया जा सकता है। श्वास के आने और जाने पर चित्त को केंद्रित किया जा सकता है। इससे सदा एकाग्रता तथा वर्तमान में तटस्थ भाव पैदा हो जाता है। श्वास के आने और जाने के मध्य ठहराव का एक बिंदु आता है। वह बहुत छोटा है, किंतु महत्त्वपूर्ण है। 'विज्ञान—भैरव' में पार्वती शिव से पूछती हैं—आप कहाँ रहते हैं? मैं आपको कहाँ खोजूँ, जिससे आप मिल सकें? शिव ने सहजता से उत्तर दिया—मैं दो श्वासों के मध्य रहता हूँ। जो मुझे दो श्वासों के मध्य खोजेगा, मैं उसे उपलब्ध हो जाऊँगा। अद्भुत प्रक्रिया है श्वास की, जिसे स्वयं या शिव को उपलब्ध होना है, वह इस पद्धति का उपयोग करेगा।

एकाग्रता का चौथा प्रकार—दर्पण प्रेक्षा

किसी एकांत स्थान या अलग कमरे में, जहाँ आवागमन न हो, ऐसे स्थान पर साफ दर्पण के सामने सुखासन में ठहरें। संकल्पपूर्वक दर्पण में चेहरे को देखें, फिर दर्पण में दिखाई दे रही दोनों आँखों में एकटक देखें। आँखों से पानी आता हो तो आने दें, उसे पोंछने की जरूरत नहीं। स्थिरता से दर्पण प्रेक्षा करते जाएँ। आँखें अपने आप जब बंद हो जाएँ, तब बंद आँखों से अपने दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र) पर एकाग्र हो जाएँ। जो कुछ घटित हो रहा है, उसके साथ रहें। दर्पण प्रेक्षा में अतीत और भविष्य की घटनाओं का दिग्दर्शन हो सकता है। मूलत: इससे एकाग्रता की क्षमता का महत्त्वपूर्ण विकास होता है।

एकाग्रता का पाँचवाँ प्रकार—दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र) की प्रेक्षा

शरीर में एक ग्रंथि है—पिट्यूटरी। यह शरीर की विभिन्न ग्रंथियों को निर्देश देती है। 'योगशास्त्र' में यह आज्ञाचक्र के रूप में प्रसिद्ध है।

यह अंतर्दृष्टि को जगाने और ध्यान की गहराई में प्रवेश का महत्त्वपूर्ण अवयव है। इस चैतन्य केंद्र पर ज्यों—ज्यों एकाग्रता होती है, त्यों—त्यों साधक ध्यान की गहराई में पहुँचता है। ध्यान की अनेक पद्धतियों में इसे सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। एकाग्रता को बढ़ाने के लिए इसी स्थान पर चित्त को केंद्रित किया जाता है। आभामंडल की परख के लिए भी यहाँ ध्यान का अभ्यास करना आवश्यक है। इससे अंतर्दृष्टि का सहज आभास होना शुरू हो जाता है। व्यक्ति को देखते ही सहज अनुभव होगा कि इसका व्यक्तित्व कैसा है।

सकारात्मकता

शारीरिक समस्या को व्यक्ति अनुभव करता है, उसके निदान का प्रयत्न करता है। शरीर स्थूल है, किंतु मन सूक्ष्म है। चिंतन का दौर चलता है। जो चिंतन चल रहा है, उसकी दिशा क्या है—सकारात्मक है या नकारात्मक? सकारात्मक का विकास किया जाए, नकारात्मक को रोका जाए। इसी तरह कल्पना भी किस दिशा में जा रही है? स्मृति में संगृहीत कर विचार का सदुपयोग किया जाए या दुरुपयोग? मन को स्वस्थ रखने के लिए उसके चिंतन, कल्पना और स्मृति का सम्यक् उपयोग होना आवश्यक है।

अवसाद

मानसिक बीमारी का एक कारण है अवसाद। अवसाद मन की अकर्मण्यता है, कुछ नहीं करने का भाव है, जो व्यक्ति को नर्वस कर देता है। कुछ कार्य करने की इच्छा ही नहीं होती है; न बोलने की इच्छा, न और किसी बात का सही जवाब दे पाता है। ऐसे लोगों को समझाने पर वह आत्महत्या की धमकी देते हैं। परिवारवाले परेशान हो उसे कुछ नहीं कह पाते। आवेश और आवेग उसके जीवन—व्यवहार का अंग बन जाता है। मनोदैहिक बीमारियों से वह ग्रस्त रहता है, साथ ही भावनात्मक समस्या उसे घेर लेती है। शरीर, मन और भाव से ग्रसित व्यक्ति किस तरह समस्याओं से मुक्त हो सकता है? उसका एक ही उपाय है कि व्यक्ति के आभामंडल का अवलोकन किया जाए, जिससे यह पता लगाया जा सके कि किस चक्र पर समस्याएँ मँडरा रही हैं? चक्र से निकलनेवाली रंगीन तरंगों का प्रवाह किस तरफ बह रहा है और वह किस अवयव को प्रभावित कर रहा है? उससे उसके शरीर, मन और भावों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? इनका विश्लेषण करते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर, मन और भावनात्मक स्तर पर कहाँ बीमारी है! बीमारी का एक बार पता लग जाए तो उसका उपचार करना सहज है। आभामंडल के बढ़ते प्रभाव की जानकारी ज्यों—ज्यों बढ़ती जाएगी, समस्याओं का समाधान उतना ही सहज व सरल होता जाता है।

निष्कर्ष रूप में, यही कहा जा सकता है कि एकाग्रता से आभामंडल को पहचानकर शरीर और मन की बीमारियों को जाना जा सकता है।

❑

अध्याय—6

आभामंडल को देखें और समझें

- योग्य ओरा थेरैपिस्ट होता है तो वह शरीर में रोग आने से पहले ही ओरा से उसकी सफाई कर देता है।
- आभामंडल देखना असंभव तो नहीं, किंतु दुरूह कार्य अवश्य है; क्योंकि मनुष्य का मन प्रतिक्षण बदलता रहता है।
- आभामंडल के रंगों का विश्लेषण करें तो सोच—समझकर रंगों के शेड्स, गहराई, स्पंदन, स्थिति, यौगिक मिश्रण आदि का ध्यान रखकर करना चाहिए।
- शक्तिशाली आभामंडल कमजोर के आभामंडल की ऊर्जा को अपनी ओर आकर्षित करता है।

आभामंडल को देखें और समझें

जब आभामंडल को देखना शुरू करते हैं, तब शरीर का निकटतम क्षेत्र होता है। स्वस्थ व्यक्ति का आभामंडल शरीर की ऊर्जा विकिरित करता है। यह रेखाओं के रूप में दिखाई देता है। ये रेखाएँ शरीर पर बादल के रूप में छाई हुई नहीं दिखती हैं, फैलती दिखाई देती हैं। ये विकिरण स्वास्थ्य के बारे में बताते हैं। जिस व्यक्ति का विकिरण संतुलित और व्यवस्थित होता है, वह व्यक्ति शक्तिशाली और स्वस्थ होता है। बीमारी या शारीरिक समस्या का उद्भव आभामंडल में शरीर पर आने से पहले ही हो जाता है। अगर योग्य ओरा थेरैपिस्ट होता है तो वह शरीर में रोग आने से पहले ही ओरा से उसकी सफाई कर देता है।

व्यक्ति का रोग दूर

बीमारी शरीर पर उतरने से पहले आभामंडल को विकृत करती है। शरीर के पास वाले विकिरण में धब्बे या बीच में सुराख, छेद मिलते हैं। विकिरण रेखाओं से स्पष्ट व्यक्त होता है कि यह व्यक्ति शीघ्र बीमार होनेवाला है। अकसर ये धब्बे और विकृतियाँ उस भाग से जुड़ी होती हैं, जहाँ से विकृति पैदा हो रही है। उलटा—सुलटा विकिरण, रेखाओं में रंगहीनता भद्दी और सूजन भरी दिखाई दे, तब समझना चाहिए कि वह व्यक्ति शीघ्र बीमार होनेवाला है। जैसे कंधे के पास लाली—युक्त धब्बे रेखाओं में दिखाई दें तो यह सब इस सच्चाई को दरशाती हैं, इसका जीवन बदलने वाला नहीं है। इसे अब किन कठिन परिस्थितियों से गुजरना होगा! समस्या जीवंत व्यक्ति के सामने ही आती है। मृत व्यक्ति के सामने कोई समस्या नहीं आती है। समस्या का समाधान हमें अपने भीतर ही खोजना है। परस्पर विचार—विमर्श से निष्कर्ष निकाला जाता है।

आभामंडल देखना असंभव नहीं, किंतु दुरूह कार्य अवश्य है; क्योंकि मनुष्य का मन प्रतिक्षण बदलता रहता है। भावों में भी परिवर्तन आता रहता है। ऐसी परिस्थिति में उसे देखना, समझना और फिर उसके अनुरूप व्याख्या करना तो उससे भी ज्यादा कठिन है। रंग—रंग में अंतर होता है। उसकी चमक में भद्दापन भी अलग—अलग प्रकार का होता है। ऐसी परिस्थिति में समझदारीपूर्वक ही व्याख्या की जा सकती है।

व्याख्या में विवेक

दो ज्योतिषी—पुत्र वाराणसी में 12 वर्ष पढ़कर घर लौटे। रास्ते में कुएँ पर पानी पीकर चलने की तैयारी में थे कि

इतने में एक बुढ़िया पास में आकर, प्रणाम कर पूछने लगी कि मेरा बेटा 12 वर्ष से बाहर है, वह कब आएगा? कहते—कहते वह भावुक हो गई। उसका शरीर काँपने लगा। उसके हाथों सें पानी से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा तत्काल भूमि पर गिर पड़ा। उनमें से एक ज्योतिषी तुरंत बोल पड़ा, ''पानी पानी में गया, मिट्टी मिट्टी में मिल गई।'' दूसरे ज्योतिषी ने कहा, ''बेटे की मृत्यु हो गई। जैसे घड़ा नष्ट हुआ, वैसे ही बेटा भी काल—कवलित हो गया।'' पहले ज्योतिषी ने कहा, ''माँ, घबराओ नहीं। आपका बेटा घर जाते ही मिल जाएगा।'' बुढ़िया बोली, ''बेटा, तेरे मुँह में घी—शक्कर। मेरा बेटा घर आ गया तो मैं तुम्हें भोजन कराऊँगी। लेकिन अपने मित्र को साथ मत लाना।'' ''माँ, ब्राह्मण का बेटा है। मेरे साथ ही पढ़ा है। मेरे साथ ही आया है, इसे भी भोजन करा देना।''

बुढ़िया घर गई। संयोग की बात थी, बेटा भी घर पहुँच गया। माँ खुशी से फूली नहीं समा रही थी। ज्योतिषियों को घर ले गई। चर्चा चल पड़ी आपको कैसे पता लगा कि बेटा घर पहुँच गया है? पहला ज्योतिषी बोला, ''घड़े के टूटने से मैंने सोचा, पानी पानी में मिल गया, मिट्टी मिट्टी में मिल गई, तो बेटा माँ से क्यों नहीं मिलेगा? बेटा मिल गया।'' लेकिन दूसरे ज्योतिषी ने कहा—बेटा मर गया। उसने कहा, ''मैंने सोचा, घड़ा गिरकर फूट गया। बेटा मृत्यु के मुँह में चला गया।'' ऐसे ही आभामंडल का नौसिखिया काला व भद्दा ओरा देखकर तत्काल बोल देगा, इन्हें कैंसर हो गया। किंतु सोच—समझकर उत्तर देना चाहिए। केवल रंगों की स्थिति का अंकन कर, अनुभवियों से परामर्श कर उन्हें बताया जाए तो ही यथार्थ व्याख्या हो सकती है।

याद रखें, आभामंडल के रंगों का विश्लेषण करें तो सोच—समझकर रंगों के शेड्स, गहराई, स्पंदन, स्थिति, यौगिक मिश्रण आदि का ध्यान रखकर ही व्याख्या की जानी चाहिए। जो दिखाई दे रहा है, उसका जीवन—व्यवहार, भावनाएँ आदि को समझकर ही व्याख्या करनी चाहिए। व्याख्या करते हुए विनम्रतापूर्वक 'मुझे ऐसा लग रहा है; हो सकता है, सही हो या न भी हो।' फिर आभामंडल के अनुसार अपनी व्याख्या प्रस्तुत करें, अतिशयोक्ति न करें।

आभामंडल को सुरक्षित रखें

शक्तिशाली आभामंडल कमजोर के आभामंडल की ऊर्जा को अपनी ओर आकर्षित करता है। कुछ लोग मिलने के लिए आते हैं। उनके जाते समय महसूस होता है कि शक्ति और ऊर्जा चुक गई है। ऐसा तभी होता है, जब कोई शक्तिशाली व्यक्ति आपके आभामंडल से गुजरा है या किसी अत्यंत कमजोर आभामंडलवाले व्यक्ति के प्रति आपके मन में सहानुभूति प्रकट हुई है तो उसमें आपकी ऊर्जा जा सकती है। आप अपने आभामंडल को शक्तिशाली और मजबूत बनाने की विधियों को समझें। सबसे पहली प्रक्रिया—शुद्ध वातावरण, जंगल या बगीचे में भ्रमण करें। गमनयोग के द्वारा ऊर्जा क्षेत्र को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। धूप—स्नान या आतापना द्वारा शक्ति को अर्जित किया जा सकता है।

सात्त्विक भोजन से भी आभामंडल को निर्मल बनाया जा सकता है। भोजन शांत चित्त होकर भावनापूर्वक करने और भोजन की मात्रा भी संतुलित एवं सीमित रखने से आभामंडल निर्मल होता है। स्वाद के वशीभूत अपेक्षा से अधिक भोजन कदापि नहीं करना चाहिए। आभामंडल की शक्ति को बढ़ाने के लिए मंत्र—जप का प्रयोग भी किया जा सकता है। 'ॐ अर्हम्' एक सिद्ध मंत्र ध्वनि है। इसके नित्य 3 मिनट के जाप से आभामंडल को स्वच्छ बनाया जा सकता है। संगीत द्वारा भी आभामंडल को परिष्कृत किया जा सकता है। क्रिस्टल पत्थरों को हाथ में रखने से आभामंडल निर्मल बनता है। क्रिस्टल अपनी ऊर्जा को विकिरित करते हैं।

आभामंडल की ऊर्जा को नष्ट होने से बचाने का सबसे पहला उपक्रम है—जागरूकता। आप जब भी किसी से

मिलें, अपने चारों ओर अर्हम् का मानसिक ऊर्जा वलय बना लीजिए, जिसको दूसरा भेद नहीं सके। अर्हम् शक्तिशाली बीज मंत्र है। इस हेतु एक प्रयोग है—बाएँ हाथ की उँगुलियों के पोरों को दाएँ हाथ की उँगुलियों के पोरों से मिलाकर मुट्ठी बंद करें। उँगलियों में सहज ही लयबद्ध स्पंदन का अनुभव होगा। सा रे ग म की तरह अब इस स्पंदन के साथ मानसिक रूप से 'अ...र्...ह...म्...' मंत्र को जोड़ें। अनुभव करें,उँगलियों के पोरों में स्पंदन हो रहा है और वह आपके मानसिक जाप के साथ ताल से ताल मिलाकर अ...र्...ह...म्..., अ...र्...ह...म्..., अ...र्...ह...म्..., अ...र्...ह...म्...का आभास दे रहा है। धीरे—धीरे यह एक अजपा, जाप की तरह अपने आप चलने लगता है। फिर इसे श्वास के साथ जोड़ें। श्वास लेते समय (पूरक करते हुए) अ...र्... एवं श्वास छोड़ते समय (रेचन करते हुए) ह...म्...का मानसिक जप करें। इस प्रयोग से आपकी ऊर्जा सुरक्षित हो जाएगी। किसी दूसरे का आभामंडल आपके आभामंडल को प्रभावित नहीं कर पाएगा।
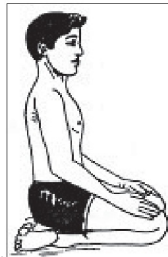
आभामंडल के ऊर्जा क्षेत्र को पकड़ें, समझें और उस पथ—संचरण क्षेत्र को अपने नियंत्रण में रखने का प्रयास करें। इस ऊर्जा क्षेत्र को आप वृत्ताकार में घूमने दीजिए। अब आप अपनी एक विशिष्ट मुद्रा बनाइए। यह मुद्रा ऊर्जा के परिपथ को बद्ध करती है। घुटने मोड़कर बैठें। अँगूठा और तर्जनी उँगुली परस्पर मिलाकर लॉक लगाएँ। पाँव का टखना और पैर की एड़ी को ऊपर रखकर—नीचे बायाँ, ऊपर दायाँ पैर रखें। केवल मुद्रा बनानी है। प्राण स्वयं इस सच्चाई को जानते हैं। किसी की ऊर्जा को जबरन लेने का अधिकार किसी को नहीं है।

ऊर्जा : श्वास का तरीका

जब आप प्रभामंडल का निर्माण करना चाहते हैं तो आपके संकल्प का प्रयोग आपके ऊर्जा स्रोत को बदल सकता है। यह कोई जादू नहीं, बल्कि सम्यक् ज्ञान पर आधारित है; साथ ही श्वास लेने की प्रक्रिया को सही बनाता है। सबसे पहले यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि श्वास लेने की जो तकनीक है, वह मुँह से लेने की नहीं है। मुँह से श्वास लेने की विधि होती तो नाक की आवश्यकता ही क्या रहती? फिर नाक के दो छिद्र हैं। श्वास कभी बाएँ से आता है, कभी दाएँ से तो कभी दोनों से। इस रहस्य को भी समझना होगा। योग ने इस पर बहुत शोध किया। ऋषि—मुनियों ने घोषणा की कि श्वास की प्रक्रिया के साथ स्वर की व्यवस्था है। शरीर में गरमी—सर्दी का संतुलन बनाए रखने के लिए बायाँ ठंडा, चंद्र स्वर और इड़ा नाड़ी है; जबकि दायाँ गरम, सूर्य स्वर और पिंगला नाड़ी है। दोनों साथ चलने से उस समय की नाड़ी को 'सुषुम्ना' कहा गया है। वह समशीतोष्ण है। अनुलोम—विलोम के क्रम से नाड़ी—संचालन से दोनों गोलाद्‍र्ध स्वस्थ व शक्तिशाली रहते हैं।

श्वास : ऊर्जा संरक्षण के लिए

श्वास केवल श्वास ही नहीं है। श्वास के साथ पाँच तत्त्व एवं पाँच रंग भी भीतर जाते हैं। रंग जब भीतर जाएगा तब आभामंडल को भी बदलेगा। केवल श्वास ही नहीं, तत्त्व और रंग ही नहीं, ऊर्जा और भाव भी साथ जाते हैं। वे व्यक्ति के व्यक्तित्व को रूपांतरित करते हैं।

श्वास जीवन को रूपांतरित करने का माध्यम है। उससे प्राणवायु भीतर जाती है और अशुद्ध हवा कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकलती है। श्वास का संतुलन बना रहे, इसलिए अनुलोम—विलोम प्राणायाम का अभ्यास करवाया जाता है। अनुलोम—विलोम प्राणायाम से पूर्व चंद्रभेदी, सूर्यभेदी प्राणायाम का अभ्यास होना आवश्यक है। चंद्रभेदी और सूर्यभेदी प्राणायाम तीन प्रकार से किए जाते हैं—

(1) चंद्रभेदी प्राणायाम

पहला प्रकार : चंद्र स्वर (बायाँ नासारंध्र) से श्वास लेना (पूरक) और चंद्र स्वर से ही श्वास छोड़ना (रेचन)। श्वास की गति मंद रहेगी, अर्थात् धीरे—धीरे पूरक और धीरे—धीरे रेचन।

दूसरा प्रकार : चंद्र स्वर (बायाँ नासारंध्र) से श्वास लेना (पूरक) और सूर्य स्वर से श्वास छोड़ना (रेचन)। श्वास की गति मंद रहेगी, अर्थात् धीरे—धीरे पूरक और धीरे—धीरे रेचन।

तीसरा प्रकार : चंद्र स्वर (बायाँ नासारंध्र) से श्वास लेना (पूरक), फिर भीतर श्वास रोकना (अंत:कुंभक), फिर चंद्र स्वर से श्वास छोड़ना (रेचन), फिर बाहर श्वास रोकना (बाह्य कुंभक)। श्वास की गति मंद रहेगी, अर्थात् धीरे—धीरे पूरक और धीरे—धीरे रेचन।

(2) सूर्यभेदी प्राणायाम

पहला प्रकार : सूर्य स्वर (दायाँ नासारंध्र) से श्वास लेना (पूरक) और सूर्य स्वर से ही श्वास छोड़ना (रेचन)। श्वास की गति मंद रहेगी, अर्थात् धीरे—धीरे पूरक और धीरे—धीरे रेचन।

दूसरा प्रकार : सूर्य स्वर (दायाँ नासारंध्र) से श्वास लेना (पूरक) और चंद्र स्वर से श्वास छोड़ना (रेचन)। श्वास की गति मंद रहेगी, अर्थात् धीरे—धीरे पूरक और धीरे—धीरे रेचन।

तीसरा प्रकार : सूर्य स्वर (दायाँ नासारंध्र) से श्वास लेना (पूरक), फिर भीतर श्वास रोकना (अंत:कुंभक), फिर सूर्य स्वर से श्वास छोड़ना (रेचन), फिर बाहर श्वास रोकना (बाह्य कुंभक)। श्वास की गति मंद रहेगी, अर्थात् धीरे—धीरे पूरक और धीरे—धीरे रेचन।

नोट : चंद्रभेदी और सूर्यभेदी प्राणायाम के तीसरे प्रकार का अभ्यास करते समय ध्यान रखें। कुंभक की समय—सीमा धीरे—धीरे बढ़ाएँ। अपनी क्षमता के अनुसार ही कुंभक करें। श्वास रोग, उच्च रक्तचाप एवं हृदय संबंधी रोग होने की स्थिति में कुंभक नहीं करना चाहिए। शारीरिक दुर्बलता एवं चक्कर आने की स्थिति में भी कुंभक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चंद्रभेदी एवं सूर्यभेदी प्राणायाम का पर्याप्त अभ्यास हो जाने के पश्चात् प्रतिदिन इसका नौ बार अभ्यास करें और तत्पश्चात् 27 बार अनुलोम—विलोम प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए, जिससे पुन: संतुलन स्थापित हो सके। अनुलोम—विलोम प्राणायाम की विधि इस प्रकार है—

(3) अनुलोम—विलोम प्राणायाम

बाएँ स्वर (चंद्र स्वर) से श्वास लें (पूरक), फिर दाएँ स्वर (सूर्य स्वर) से (रेचन) श्वास छोड़ें और पुन: सूर्य स्वर से पूरक तथा चंद्र स्वर से रेचन करें।

अनुलोम—विलोम प्राणायाम में मौसम के अनुसार अभ्यास करें, अर्थात् गरमी के मौसम में चंद्र स्वर से अभ्यास प्रारंभ करें और चंद्र स्वर से ही संपन्न करें तथा सर्दी के मौसम में सूर्य स्वर से अभ्यास प्रारंभ कर सूर्य स्वर से ही संपन्न करें। इसके साथ ही नाड़ी शोधन प्राणायाम, जिसमें 9 बार तेजी से श्वास लेते हैं और तेजी से प्रश्वास छोड़ते हैं, फिर 9 बार मध्यम गति से श्वास—प्रश्वास किया जाता है और फिर 9 बार मंद गति से अनुलोम—विलोम की

तरह श्वास—प्रश्वास किया जाता है।

इस प्रकार श्वास की क्रिया से हम न केवल श्वास ले रहे हैं, बल्कि ऊर्जा को विकसित भी कर रहे हैं। सामान्यत: श्वास 2 सेकंड में लेते हैं और 2 सेकंड में छोड़ते हैं। एक मिनट में 15 श्वास—प्रश्वास होता है। पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् धीरे—धीरे इस अवधि को 5 सेकंड तक बढ़ाएँ। परिणामत: 10 सेकंड प्रत्येक श्वास—प्रश्वास में लगा और एक मिनट में 6 श्वास हो गए। इस अभ्यास की परिपक्वता के पश्चात् इसके साथ कुंभक जोड़ा जा सकता है, अर्थात् 5 सेकंड में पूरक, 5 सेकंड अंत:कुंभक, 5 सेकंड में रेचन और 5 सेकंड बाह्य कुंभक अर्थात् 3 श्वास प्रति मिनट की स्थिति हो जाती है।

इसे अभ्यास—क्रम में डालने के लिए श्वास लेते समय दोनों हाथों को 5 सेकंड में कंधे के समानांतर फैलाएँ। श्वास लेते समय 5 सेकंड में आगे की ओर दोनों हाथों को प्रणाम की मुद्रा में मिलाएँ। फिर श्वास लेते हुए हाथों को फैलाया, 5 सेकंड तक श्वास रोका, फिर श्वास लेते हुए हाथों को आगे की ओर मिलाया और 5 सेकंड श्वास रोका। परिणामत: 5 सेकंड श्वास लिया, 5 सेकंड श्वास रोका, 5 सेकंड श्वास बाहर निकाला, फिर 5 सेकंड श्वास रोका। इस क्रिया से श्वास के संतुलन के साथ—साथ ऊर्जा का भी संतुलन हो जाता है।

श्वास को दीर्घ करने का दूसरा प्रकार है—महाप्राण ध्वनि, अर्हम् और ॐ की ध्वनि का अभ्यास। 6 सेकंड में श्वास को पूरी शक्ति से भरते हैं। फिर महाप्राण ध्वनि, अर्हम् की ध्वनि या ॐकार ध्वनि करने से 12 सेकंड लग जाते हैं। अंत में 2 सेकंड रुककर उस ध्वनि की गूँज का अनुभव किया जाता है। परिणामत: एक श्वास—प्रश्वास में 20 सेकंड का समय लगता है और इस प्रकार 3 श्वास—प्रश्वास प्रति मिनट तक पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार शरीर में प्राण का संचार सुव्यवस्थित होता है।

प्राणायाम के इस क्रम में प्रारंभ में दाएँ हाथ के अँगूठे को दाएँ नासारंध्र पर रखें, मध्यमा बाएँ नासारंध्र पर और तर्जनी उँगुली को दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र), भ्रू—मध्य में रखें। जागरूकता से चंद्रभेदी, सूर्यभेदी और अनुलोम—विलोम का अभ्यास करें। सप्ताह—दो सप्ताह के अभ्यास के पश्चात् हाथ के सहारे की अपेक्षा नहीं रहेगी। केवल संकल्प से जैसा सोचते हैं, वैसे ही श्वास—प्रश्वास किया जा सकता है। अनुलोम—विलोम प्राणायाम को प्रेक्षाध्यान पद्धति के अंतर्गत 'समवृत्ति श्वास प्रेक्षा' के नाम से भी जाना जाता है, जिसमें मात्र संकल्प के द्वारा स्वेच्छा से श्वास को चाहे जैसी गति दी जा सकती है। यही योग का मूल है कि आपका मूल संकल्प जाग्रत् रहे तो जो चाहे वह कार्य कर सकते हैं।

सार संक्षेप में, आभामंडल को देखना व समझना असंभव तो नहीं है, लेकिन मन की चंचलता के कारण कठिन अवश्य है। श्वास प्रेक्षा तथा प्राणायाम के माध्यम से इसको देखने का अभ्यास किया जा सकता है।

❑

अध्याय— 7

कैसे करें आभामंडल का दर्शन?

- आभामंडल स्थूल चमड़ी नहीं है, जिसे हम स्पर्श कर पहचान सकें।
- कैसे अनुभव करें?
- आभामंडल की संरचना।
- लेश्या की छह परतें।

कैसे करें आभामंडल का दर्शन?

आभामंडल स्थूल चमड़ी नहीं है, जिसे हम स्पर्श कर पहचान सकें। आभामंडल सूक्ष्म कणों की परत है। उसकी पहचान के लिए दृष्टि को स्थिर और लगातार अभ्यास की अपेक्षा होती है। सामान्यतः हमारी आँखों को जो अभ्यास है, उस अभ्यास के अतिरिक्त आभामंडल को पहचानने के लिए त्राटक एवं इंद्रिय और मन के पार अनुभूतियों को विकसित करना होता है। हमारे भीतर प्राणधारा चल रही है, उसे अनुभव करने के तरीके को पकड़ना होता है। हमारे शरीर से प्रतिक्षण गरमी, गंध, तदाकार प्रतिच्छवि, छाया बाहर निकलती रहती है। वे स्थूल हैं। उन्हें इन आँखों से, नाक से, स्पर्श से अनुभव किया जा सकता है; किंतु आभामंडल की प्रतिच्छाया सूक्ष्म है। उसे देखने के लिए आँखों को अभ्यास चाहिए या अनुभव से उन्हें पकड़ने की क्षमता चाहिए।

कैसे अनुभव करें?

चारों ओर प्रकंपनों का प्रवाह प्रतिक्षण प्रवाहित रहता है। इन प्रकंपनों में—चाहे वे शीतलता के हों, उष्णता के हों, सुगंधमय हों, दुर्गंधमय शरीर का स्पर्श कर रहे हों या कुछ भी अनुभव नहीं हो रहा हो। शांत एकांत स्थान पर सुखासन में बैठकर वहाँ के वातावरण को, शरीर के भीतर और बाहर जो कुछ अनुभव हो रहा हो, उसे अनुभव करने का प्रयास करना होता है। यदि आपको कुछ भी अनुभव नहीं हो रहा हो तो निराश होने की आवश्यकता नहीं। कुछ भी अनुभव नहीं होना भी एक अनुभव है। इसको समझने के लिए जाग्रत् चेतना से पार अर्धजाग्रत् चेतना पर अपने चित्त को केंद्रित करना होता है। जाग्रत् चेतना की किसी विषय को पकड़ने की एक सीमा है। (उसे वे शब्द से, वाक्य से, उसके अर्थ से, जो उसने अपने मस्तिष्क में परिभाषाएँ संकलित कर रखी हैं) उसके अर्थ निश्चित हैं। उसके अतिरिक्त वे नहीं समझते हैं और नहीं सोच पाते हैं। दो आयाम (डायमेंशंस) से देखते हैं। तीसरा और चौथा आयाम तो कल्पना में भी नहीं आता। चित्र जो सामान्य देखते हैं, उनकी लंबाई—चौड़ाई दिखाई देती है, लेकिन गहराई दिखाई नहीं देती है। ऐसे चित्र भी बन गए हैं, जिनमें गहराई भी है। ऐसे ही शरीर के चारों ओर फैले प्रकंपनों को पकड़ने और आभामंडल के सूक्ष्म स्पंदनों को त्रि—आयामी दृष्टि चाहिए। उसको विकसित करने से वह भी पकड़ में आने लगती है। त्रि—आयामी दृष्टि विकसित करने के लिए दो प्रयोग हैं—

पहला प्रयोग—दो या चार व्यक्ति एक—दूसरे के आमने—सामने बैठकर भावना करें कि प्रत्येक व्यक्ति के दाईं ओर से दूसरे व्यक्ति की ओर ऊर्जा बह रही है, उसका अनुभव करें, प्राण के प्रवाह को तेज करें। ज्यों—ज्यों तेज इसे करेंगे, आप अनुभव करेंगे कि प्राण—ऊर्जा तीव्रता से बहने लगी है।

दूसरा प्रयोग ऊर्जा का प्रयोग है। दोनों हाथों को याचना की मुद्रा में रखें। भावना करें कि ब्रह्मांड से प्राण—ऊर्जा बरस रही है। हाथों की उँगलियों में सरलता से प्राणधारा जा रही है। हाथों की उँगलियों में सर—सर कोई ऊर्जा भीतर

जाते हुए अनुभव होगी। उसके पश्चात् दोनों हाथों की हथेलियाँ एक—दूसरे के आमने—सामने करनी होंगी। एक उत्तरी ऊर्जा की धारा दूसरी दक्षिणी ऊर्जा की धारा, दोनों एक—दूसरे को अपनी ओर खींच रहे हैं। दोनों हाथ परस्पर चुंबक की तरह चिपकने की कोशिश कर रहे हैं और अंत में चिपक जाते हैं। चिपकी हुए हथेलियों को खोलने की कोशिश करते हैं तो भारी खिचांव पड़ता है, फिर खुलती हैं, फिर नजदीक लाते हैं, दूर ले जाते हैं। इससे प्राण—ऊर्जा का अनुभव स्पष्ट होता है। यह ऊर्जा चुंबक की नहीं, हमारी है, जिसे प्राण—ऊर्जा कहते हैं। 'प्राणिक हीलिंग' के नाम से एक—दूसरे की चिकित्सा की जाती है। यह भावना का प्रयोग है। प्राचीन युग में आयुर्वेदाचार्य होते थे। आज भी हैं। ऐसे ही अतीत में प्राणाचार्यों की एक शक्तिशाली परंपरा थी। शरीर में वायु, पित्त और कफ दूषित होने से बीमार हो जाते हैं। ऐसे ही प्राणधारा का असंतुलन होने से भी व्यक्ति बीमार हो जाता था। प्राणाचार्य उसे प्राणधारा देकर स्वस्थ कर देते थे। यह सब ऊर्जा का खेल है, जिसे प्राणिक ऊर्जा से कर रहे हैं। इसी प्रकार 'रेकी' है। अपनी ऊर्जा भावना को प्रतीकों के माध्यम से प्रेषित करते हैं, उससे व्यक्ति स्वस्थ होता है। 'रेकी' चिकित्सा रूप में विकसित हो रही है। प्राणधारा जब रंगों में अभिव्यक्त होती है, तब उसे 'लेश्या' कहा जाता है। 'लेश्या' जैन पारिभाषिक शब्द है, जिसका तात्पर्य रंगीन भावधारा से है। अंग्रेजी भाषा में इसे 'ओरा' और हिंदी में 'आभामंडल' कहा जाता है। आभामंडल की पहचान से पूर्व अपने चारों ओर फैले वातावरण गरमी, सर्दी, गंध या जो भी अनुभूति हो रही हो, उसे अनुभव करें। एकाग्र होकर अपने भीतर क्या भावधारा चल रही है, उसे समझने का प्रयास करें। भीतर की भावधारा निर्मल है, पावन है या मलिन है, एकटक आँखों को बिना टिमटिमाए हाथों की चमड़ी की ऊपरी परत को देखने की कोशिश करें। उस पर चमकती हलकी सी एक परत दिखाई दे सकती है। त्राटक के अभ्यास से, दृष्टि स्थिरता से, अंतर्दृष्टि खुलने से आभामंडल का अनुभव किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त और भी विधियाँ हैं, जिनकी चर्चा आगे की जा सकती है।

आभामंडल की संरचना

आभामंडल एक रूप में स्थिर नहीं रहता है। वह भावों के साथ बदलता रहता है। आभामंडल की स्थिति को समझने व पहचानने के लिए केवल बाह्य दृष्टि और रंग ही पर्याप्त नहीं हैं, उसके लिए अंतर्दृष्टि भी चाहिए, जिससे बदलते हुए भावों के साथ आभामंडल के रंगों की स्थिति का विश्लेषण किया जा सके। ऐसे कैमरे और कंप्यूटर भी बाजार में आ गए हैं, जिनसे रंगों एवं भावों का विश्लेषण किया जा सकता है। सॉफ्टवेयर भी मनुष्य का बनाया हुआ है। वह कोई सर्वज्ञ नहीं है, अपितु अपने मस्तिष्क में चिंतनधारा के अनुसार बनाया हुआ है। एक ज्योतिषी जन्मकुंडलियों का एक दृष्टि से विश्लेषण करता है। वह विश्लेषण पूर्ण हो, यह आवश्यक नहीं है। दूसरा ज्योतिषी उसी तरह विश्लेषण करता है। दोनों का अपना—अपना कोण होता है। इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि पहलावाला ठीक था और दूसरा गलत! दोनों ही अपना—अपना दावा पेश करते हैं कि हमने जो निर्णय दिया है, वह सही है। किसी के कहने से तो यथार्थ नहीं हो जाता है, यथार्थ तो परिणाम की सच्चाई से जान सकते हैं। इसी तरह आभामंडल के विश्लेषण के अपने—अपने कोण होते हैं। जिसका यथार्थ से मेल खा जाता है, वह यथार्थ हो जाता है।

लेश्या की छह परतें

प्रेक्षा और जैन दर्शन की मौलिक मान्यता है कि लेश्या के छह प्रकार हैं। कृष्ण, नील और कापोत को कुत्सित लेश्या, अधर्मलेश्या कहा गया है। तेजस, पद्म और शुक्ल लेश्या को धर्म लेश्या, श्रेष्ठ लेश्या कहा गया है। लेश्या

का एक दूसरा प्रकार द्रव्यलेश्या और भावलेश्या के रूप में निरूपित किया गया है। शरीर के वर्ण और आणविक आभा को 'द्रव्यलेश्या' कहा जाता है। यह परमाणुओं का समूह है। विचार और भावना को भावलेश्या कहा गया है। लेश्या रंगीन पौद्गलिक अणुओं का पर्यावरण है। (इसकी खोज जीव और पुद्गल के स्कंधों का अध्ययन करते समय हुई।) जीव के स्पंदनों से पुद्गल (परमाणु) प्रभावित करनेवाले अनेक परमाणु (वर्ग) समूह हैं। उनमें एक वर्ग का नाम है लेश्या। लेश्या का शाब्दिक अर्थ आणविक रंगीन आभा, कांति, प्रभा, छाया है। पुद्गलों से प्रभावित होनेवाले जीव परिणामों को लेश्या कहा गया है। आणविक आभा कर्मलेश्या का ही नामांतर है। कर्म पौद्गलिक है। चेतना के भावों से आकृष्ट कर्म वर्गणाएँ चेतना के आवरण रूप हो जाती हैं। उनको ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, आयुष्य कर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, अंतराय कर्म कहते हैं। इनका विभाजन ज्ञान के आवरक, दर्शन के आवरक—इस तरह चेतना के गुणों को रोकते हैं, इसलिए जिनको आवरण के रूप में स्वीकृत किया है, इनमें छठा कर्म नामकर्म, यह शरीर की रचना संबंधी पुद्गलों से है। शरीर नामकर्म के पुद्गलों का ही एक वर्ग कर्म लेश्या ही है। इसका विस्तार से वर्णन 'उत्तराध्ययन' के चौंतीसवें अध्याय में किया गया है। लेश्या से विचार और भाव प्रभावित होते हैं। भाव और विचारों से लेश्या, आभामंडल प्रभावित होते हैं। लेश्याध्यान में रंगीन भावधारा का चिंतन करते हैं, तब अशुभ पुद्गल क्षीण होते हैं। शुभ भाव और शुभ लेश्या का विकास होता है।

लेश्याध्यान प्रेक्षाध्यान की मौलिक खोज है। ध्यान की परंपरा में रंगों का ध्यान अपने आप में विलक्षण है। डॉ. डीग्लेंडी पेज ने जब रंगों का ध्यान किया, वे ध्यान में भाव—विभोर हो गए। उन्होंने कहा, ''मैंने जीवन में ऐसा आनंद नहीं पाया। इसे सुख नहीं, परम सुख और परम आनंद कहा जा सकता है।''

❑

अध्याय—8

आभामंडल के बदलाव से भाव—परिवर्तन

- भाव से लेश्या और लेश्या से आभामंडल प्रभावित होता है।
- जैसा भाव और लेश्या होती है, वैसी ही हमारी मन, वाक् और शरीर की प्रवृत्ति होती है।
- विशुद्ध भाव चेतना की पवित्रता का द्योतक है।
- आभामंडल पर उतरनेवाले विभिन्न रंग भीतर की समस्याओं को दरशाते हैं।
- रोग का कारण है—खान—पान, रहन—सहन, दिनचर्या एवं ऋतुओं के विपरीत जीवन—शैली को स्वीकार करना।

आभामंडल : भीतर की रश्मियाँ

कर्म और चेतना से प्रस्फुटित होनेवाली रश्मियाँ आभामंडल का निर्माण करती हैं। आभामंडल केवल रंग ही नहीं है। रंग तो मात्र रश्मियाँ हैं, जो शरीर के चारों ओर फैली हुई होती हैं। रश्मियाँ मात्र रश्मियाँ ही नहीं हैं। उनके पीछे भावों की श्रृंखला है। भावों को प्रशिक्षित करने के लिए प्रेक्षाध्यान और अनुप्रेक्षा का अभ्यास आवश्यक है। प्रेक्षा के द्वारा भावों में रूपांतरण किया जा सकता है। प्रेक्षा करने के लिए शरीर, विचार और ज्ञान का उपयोग करते हैं। विचार और शरीर तो भावों के पीछे चलनेवाले हैं। यदि भावों को ठीक कर लिया जाए जो शरीर, वाक् और मन की क्रियाएँ स्वत: ठीक हो जाती हैं। मन, वाक् और शरीर का संचालन करनेवाली भावधारा है। भावों का आधार है लेश्या।

आभामंडल और योग एक—दूसरे से इतने संयुक्त हैं कि उन्हें पृथक् करना कठिन है। फिर भी उनके बीच में ऐसी सूक्ष्म रेखा खींची जा सकती है। भाव से लेश्या, लेश्या से आभामंडल प्रभावित होता है। जैसा भाव और लेश्या होती है, वैसी ही हमारी मन, वाक् और शरीर की प्रवृत्ति होती है। इंद्रियाँ जिन भावों को ग्रहण करती हैं, संवेग उसी प्रकार उत्तेजित होते हैं। संवेगों की उत्तेजना के साथ ही लेश्या में परिवर्तन हो जाता है। हमारी चेतना का एक विशिष्ट गुण है—ज्ञान। जब हमारा ज्ञान राग—द्वेष में परिणत होता है, तब बंधन का कारण बनता है। सीधा—ज्ञान से बंधन नहीं होता। जब हमारे भावों में परिवर्तन होता है तो क्रिया को उत्तेजना मिलती है, परिणामत: मन, वाक् और काया की चंचलता बढ़ती है। इस चंचल प्रवृत्ति को 'योग' कहा जाता है।

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति ही योग

यहाँ योग का तात्पर्य 'चित्तवृत्ति निरोध: योग:' नहीं है, अपितु यहाँ 'मनोवाक्काय प्रवृत्ति: योग:' है। मन, वचन, काया की प्रवृत्ति के साथ भाव बदलते हैं। भाव के साथ लेश्या में परिवर्तन हो जाता है। भाव और लेश्या का ऐसा गहरा संबंध है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता है। भाव सूक्ष्म हैं। स्थूल चेतना से उनको पकड़ा नहीं जा सकता है। भाव से बदलनेवाली लेश्या का आभामंडल रंगीन होता है। वह हमारी पकड़ में यंत्र द्वारा आ सकता है। लेश्या की रंगीन धारा को बाहर रंगों से बदला जा सकता है। इस परिवर्तन से भाव बदल जाते हैं। भाव बदलते ही मन, वचन, काया की प्रवृत्ति बदल जाती है। आचार्यश्री कालूगणी देह—चिंता से निवृत्त होने के लिए बीकानेर के गाँव के बाहर थंडिल भूमि में पधारे थे। वहाँ एक व्यक्ति छिपा हुआ था। उसके हाथ में पिस्तौल थी। उसके भाव कलुषित थे। वह पिस्तौल के घोड़े को थामे हुए था। आचार्यश्री कालूगणी का भव्य भाल, तेजस्वी आभामंडल,

निर्मल भाव से ओत—प्रोत चेतना को देखते ही उसके हाथ से पिस्तौल गिर गई। वह उनके चरणों में गिर गया —'आज अनर्थ हो जाता, यदि मैं कुकृत्य कर देता, किसी के बहकावे और प्रलोभन में आकर मैं कुछ कर बैठता तो क्या होता?' मंगल भावों और आभामंडल ने उसके मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को बदल दिया।

आभामंडल पौद्गलिक है। उसकी तरंगें और अणु होते हैं। इन अणुओं को 'द्रव्य लेश्या' कहा जाता है। द्रव्य लेश्या के दो प्रकार हैं—कर्म लेश्या और नोकर्म लेश्या। कर्म लेश्या का तात्पर्य है—हमारी चेतना पर आए कार्मण शरीर का आवरण। जब ये कर्म परमाणु तेजस कर्म के साथ मिलकर गतिशील होते हैं, तब वे मन, वचन, काया को प्रभावित करते हैं। लेश्या के परमाणु वर्ण, गंध, रस और स्पर्शवाले होते हैं। आगम में वर्ण के आधार पर इनके छह विभाग किए गए हैं—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या।

जामुन के पेड़ के दृष्टांत से मनुष्य की वृत्तियों का उल्लेख किया गया है। जामुन के एक पेड़ के पास छह व्यक्ति पहुँचे। पेड़ फलों से लदा हुआ था। हवा से काफी जामुन नीचे गिरे हुए थे। भारी मात्रा में पड़े हुए फलों को इकट्ठा कर, खाकर भूख को तृप्त किया जा सकता है। नीचे पड़े हुए को कौन खाए? हम तो पेड़ पर चढ़कर उनकी डालियों पर लगे ताजा फलों को खाएँगे। टहनियों पर लगे हुए फलों को आराम से खाकर तृप्त हो जाएँगे। तीसरे ने कहा—डालियों पर कहाँ ऊपर जाएँगे? बड़ी डाल को काट लेंगे तो अपने आप हमें जामुन प्राप्त हो जाएँगे। चौथे ने कहा—यहाँ से बड़ी डाल को काट लिया जाए तो आराम से जामुन प्राप्त हो जाएँगे। पाँचवें ने कहा—यहाँ से इस गोड़ (तना) को ही काट लिया जाए तो सब जामुन प्राप्त हो जाएँगे। छठे ने कहा—इस पेड़ को जड़ से उखाड़ लिया जाए तो न ऊपर चढ़ने की जरूरत होगी, न काटने की, यहाँ बैठे—बैठे आराम से फल प्राप्त हो जाएँगे।

छहों व्यक्तियों की भाव—दशा का वर्णन किया गया है। छठा व्यक्ति क्रूरतम है, पाँचवाँ क्रूरतर है, चौथा क्रूर है। तीसरा व्यक्ति शांत वृत्तिवाला है। दूसरा व्यक्ति शांततर और पहला व्यक्ति शांततम, परम शांत है। शुक्लध्यानी, जिनकी लेश्या शुक्ल है, वह परम शांति का अनुभव करता है। आभामंडल से भावों के बदलाव की जानकारी प्राप्त होती है। रंगीन ध्यान से लेश्याओं में रूपांतरण होता है। इस रूपांतरण से भाव विशुद्ध होते हैं। विशुद्ध भाव चेतना की पवित्रता का द्योतक है।

आभामंडल के परिवर्तन

आभामंडल हमारे भीतर के रोग एवं भावना को अभिव्यक्त करते हैं। आभामंडल पर उतरनेवाले विभिन्न रंग भीतर की समस्याओं को दरशाते हैं। भावधारा निर्मल और रंग चमकीले व स्पष्ट होते हैं। आभामंडल की किरणें कमजोर और भद्दी होती हैं तो सहज कोई—न—कोई समस्या या रोग प्रकट हो सकता है। आभामंडल पर रोग छह महीने पहले ही उतर आता है। आभामंडल के विशेषज्ञ चक्रों को साफ कर आभामंडल में परिवर्तन ला देते हैं। मानव मस्तिष्क में जो भावनाएँ उभर रही हैं, वे ही आभामंडल में अभिव्यक्त होती हैं। शरीर में, मन में आई विकृतियों के कारण आभामंडल में धब्बे या मटमैले रंग दिखाई देने लगते हैं।

रोग का कारण है खान—पान, रहन—सहन, दिनचर्या एवं ऋतुओं के विपरीत जीवन—शैली को स्वीकार करना। रोगों को दूर करने के लिए केवल आभामंडल को ही ठीक करना नहीं होता, अपितु खान—पान एवं व्यवहार में परिवर्तन लाना भी आवश्यक होता है। आभामंडल के परिवर्तन से भी रोगों का शमन होता है। आभामंडल को निर्मल करने के लिए विशिष्ट मंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है। मस्तक पर 'ॐ' की दीर्घ ध्वनि, कंठ (विशुद्धि केंद्र) पर 'ह्राँ' की मंत्र ध्वनि, फेफड़ों पर 'ह्रीं' की ध्वनि का जप करें। नाभि पर 'ह्रँ', लीवर पर 'ह्राँ' और 'ह्रँ'—पूरे शरीर पर ध्वनि तरंगों को फैलाएँ। इससे केवल आभामंडल ही शक्तिशाली नहीं बनता है, बल्कि हमारा स्वास्थ्य भी सुधर

जाता है।

बुद्धिजीवी की आभा

डॉक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, पायलट, उच्च पदों पर कार्यरत मैनेजर, डायरेक्टर आदि बुद्धिजीवियों की आभा नीले रंग की होती है। जिन व्यक्तियों की आभा चमकीली होती है, उनको सम्मान या विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त होते हैं।

पत्रकार, लेखक, समाज—सेवी, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आदि व्यक्तियों का आभामंडल नारंगी और गहरा नीला होता है। वे बुद्धिजीवी और चिंतनशील होते हैं।

लोकप्रिय व्यक्तियों की आभा

कुछ व्यक्ति अत्यंत लोकप्रिय होते हैं। वे जहाँ भी खड़े होते हैं, लोग उनका अनुकरण और अनुशंसा करने लगते हैं। ऐसे लोगों का आभामंडल गुलाबी और सुनहरी होता है। आभामंडल का निरीक्षण कर उनके व्यक्तित्व की पहचान के साथ उसको किस कार्य में सफलता प्राप्त होगी, उसके अनुसार उसे उस कार्य में नियोजन की व्यवस्था करनी होती है।

सारांश में, यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति के आभामंडल में परिवर्तन से भावों में भी परिवर्तन संभव है। जैसा भाव और लेश्या होती है, वैसी ही चेतना का विकास होता है। रंगों के माध्यम से भी समस्याओं का आभास किया जा सकता है।

❑

अध्याय— 9

आभामंडल और चिकित्सा

- आभामंडल और रंग
- आभामंडल को देखें और समझें
- व्यक्ति का रोग दूर
- आभामंडल को सुरक्षित रखें
- ऊर्जा : श्वास का तरीका
- श्वास : ऊर्जा संरक्षण के लिए
- चंद्रभेदी प्राणायाम
- सूर्यभेदी प्राणायाम
- अनुलोम—विलोम प्राणायाम

आभामंडल और रंग

मानव जीवन को रंग सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। शरीर के भीतर के अवयव भी रंगीन होते हैं। रंग है तो जीवन है। रंग नहीं तो जीवन भी नहीं। जैसा रंग वैसा ढंग। जैसा ढंग वैसा रंग। अभी तक तो सुनते आए थे—'पंच तत्त्व से बना शरीरा।' अब तो कहना होगा—'पंच रंग से बना शरीरा।' यह शरीर भी पाँच रंग से रँगा हुआ है। जब किसी रंग की शरीर में कमी हो जाती है, तब शरीर रोग की रचना कर देता है। वर्णमाला अक्षरों की पहचान भी वर्णों से होती है। सारा विश्व ही वर्ण (रंग) मय है। सूर्य से निकलनेवाला प्रकाश भी सात रंगोंवाला है। सूर्य के सातों रंग ही विश्व को ऊर्जा एवं जीवन प्रदान करते हैं।

रंग केवल रंग ही नहीं हैं, बल्कि उनकी अपनी ऊर्जा और प्रभाव भी होता है। रंग संवेदनशील होते हैं। रंगीन वस्त्र सूर्य—ऊर्जा को ग्रहण करते हैं, विकिरण करते हैं। 'सूर्य किरण चिकित्सा' का पूरा एक क्रम है। 'रंग चिकित्सा' भी वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में स्वीकृत हो गई है।

'ओरा प्रेक्षा थेरैपी' के द्वारा जब चिकित्सा करते हैं, तब समस्याओं का समाधान भी होता है। 'प्रेक्षा ओरा थेरैपी' से आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित होती हैं। हमें आश्चर्य होता है; पर हर एक की विधि, व्यवस्था और नियम हैं। रंग जीवन के अभिन्न अंग हैं। रंग के बिना जीवन चल नहीं सकता। रंग हमारे शरीर, मन और भाव को प्रभावित करते हैं। रंग जीवन के हर क्षेत्र में उपयोगी हैं। किसी घटना, विचार और अंतरंग अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए भी रंगों का सहारा लेना पड़ता है। लोगों के भाव, विचार, अनुभव और उनकी भाषा को समझने के लिए वर्णाक्षरों का सहारा लेना होता है।

रंग प्रकाश की विशेषता है। जब प्रकाश विभिन्न तरंगदैर्घ्यों (प्रिज्म) में फूटता है तो विभिन्न रंग देखने को मिलते हैं। यह सूर्य रोशनी से प्रिज्म पकड़ने जैसा है। विपरीत धरातल पर सतरंगी दृश्य को इंद्रधनुष के रूप में देखेंगे। एक—एक रंग के असंख्य प्रकार होते हैं।

आभामंडल की ऊर्जा प्रकाश व रंग में प्रतिबिंबित होती है। साथ ही वह शरीर, मन और भावों की संवेगात्मक स्थिति का भी दिग्दर्शन कराती है। आभामंडल संबंधी प्रशिक्षण प्राप्त कर आँखों की क्षमता का विकास करें।

छड़ व पेंडुलम के प्रयोग से आप बता सकेंगे कि आपका आभामंडल किन रंगों को विकिरित कर रहा है। रंगों को पहचानना इतना कठिन नहीं है, जितना कठिन रंगों को देखकर उनकी सही व्याख्या करना है। जिस क्षण आप रंग देख रहे हैं, उस समय उसके शरीर की स्थिति तो स्थूल है, लेकिन मन चंचल व सूक्ष्म है, मस्तिष्क निषेधात्मक भावों से भरा हुआ है। भावधारा भी विचित्र है। ऐसी परिस्थिति में निर्णय करना कितना कठिन होता है! यह तो ज्यों—ज्यों इस विद्या क्षेत्र में प्रवेश करेंगे, त्यों—त्यों समझकर हैरान हो जाएँगे। भगवान् महावीर ने कैसे लेश्याओं और भावों की ऊर्जा को एक साथ जोड़कर ही कहा कि जैसी व्यक्ति की भावधारा होगी, वैसी ही उसकी लेश्या होगी। लेश्या और भाव दोनों एक—दूसरे को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। भाव से ही हमारा मन संचालित होता है। मन के निर्देशों को शरीर क्रियान्वित करता है। यह अत्यंत सूक्ष्मग्राही परिस्थिति है कि व्यक्ति में क्या—क्या घटित हो रहा है, इसका सही अंकन करना किसी 'ओरा थेरैपिस्ट' (आभा—चिकित्सक) के लिए दुष्कर कार्य है। इसलिए 'ओरा थेरैपिस्ट' को अपने शरीर और मन को एकाग्र रखकर उस क्षण की घटना को संग्रहण करना और यथार्थ व्याख्या करना दुरूहतर कार्य है। 'ओरा फोटोग्राफी' के कैमरों ने अब एक सुविधा प्रदान कर दी है कि जिस क्षण आप फोटोग्राफी कर रहे हैं, उस क्षण का आपका आभामंडल कैमरे के लेंस में कैद हो गया। कोई उसे स्वीकार करे या इनकार करे, उसे बदला नहीं जा सकता। उस क्षण की व्याख्या कोई एक व्यक्ति करे या हजार, वह क्षण बदला नहीं जा सकता। इस क्षण की व्याख्या यदि सुपर कंप्यूटर करने लग जाए तो सही—सही व्याख्या को उपलब्ध हो सकते हैं। जिस तरह से व्यक्ति की कुंडली भाव और अक्षांशों, नक्षत्रों आदि की व्याख्या कंप्यूटर कर देता है, कल ऐसा ही आभामंडल की व्याख्या को प्रस्तुत करने में हो सकता है। कठिनाई है इस क्षण शरीर, मन और भावों से नि:सृत रंग रश्मियाँ क्या कहना चाहती हैं, उसको समझकर व्याख्या प्रस्तुत करना, यह सफल आभामंडल चिकित्सक (ओरा थेरैपिस्ट) की करामात होगी। अलग—अलग रंग विभिन्न दृष्टिकोणों, मन:स्थिति और ऊर्जा प्रतिमानों को दरशाते हैं। यद्यपि आप सामान्यतया पहचान लेते हैं कि दिखाई देनेवाले रंग क्या दरशा रहे हैं। लेकिन यह बात याद रखें कि रंगों—रंगों में भी हजार अंतर होते हैं और उनकी व्याख्या भी हजार प्रकार से की जाती है। ऐसी परिस्थिति में रंग वर्णक्रम में असंख्य आभा—भेद (रंगत) होते हैं। पीले, हरे आदि के बहुत भेद हैं। इन भेदों के अंतर को समझते हुए उनकी सही व्याख्या करना कितना मुश्किल कार्य है!

आभामंडल के भीतरी रंगों को निर्धारित करने के लिए कुछ निर्देशों का पालन करना जरूरी है—

1. शरीर के बिलकुल निकट जो रंग होते हैं, वे शरीर की स्थिति का विवरण व्यक्त करते हैं। बाहरी रंग संवेगात्मक, मानसिक, भावात्मक ऊर्जा को दरशाते हैं, जो उन शारीरिक रंगों पर प्रभाव डाल सकते हैं।
2. रंग जितने स्पष्ट और चमकदार होंगे, उतने ही श्रेष्ठ और स्वस्थ मानसिक स्थिति का विवरण देते हैं।
3. प्रगाढ़ चमकदार रंग ऊर्जा के उच्च स्तर का संकेत देते हैं। इन सबको नकारना सरल नहीं। स्थिति सामान्य है कि विशेष, आप एकदम निर्णय नहीं कर पाएँगे।
4. आभामंडल में सबसे अधिक रंग होते हैं। प्रत्येक रंग अपनी भिन्न उपस्थिति प्रकट करता है। साथ ही आपको कौन से रंग का किसके साथ मिश्रण है, उसे ध्यान में रखना होगा। इसलिए अपने अभ्यास को परिपक्व बनाएँ, तब ही सही निर्णय लिया जा सकता है।
5. जब आप दूसरों के आभामंडल को देख रहे होते हैं, तब उसके आभामंडल का रिफ्लेक्शन (प्रतिच्छाया) आपके आभामंडल पर पड़ता है। इसलिए अपने आभामंडल की पहचान भिन्न रखें। फिर सामनेवाले के आभामंडल पर ध्यान केंद्रित कर अभ्यास करें।
6. आभामंडल को देखते समय आप अपने चित्त को भी देखें—क्या वह तटस्थ है? क्या वह वर्तमान में है? क्या

वह राग—द्वेष से रहित है? कहीं उस व्यक्ति की अन्य विशेषताओं से हमारा चित्त प्रभावित तो नहीं है? अन्यथा निर्णय सही नहीं हो पाएगा। कई बार ऐसा होता है, मैले कपड़ों में पवित्र आत्मा का आभामंडल है और सफेद व सुंदर वस्त्रों में मैली, अपवित्र आत्मा का आभामंडल है। आपकी अंतश्चेतना की जो आवाज निकले, उसे समझदारीपूर्वक मृदु शब्दों में व्यक्त करें या उसे टाल भी सकते हैं। हो सकता है, उस समय उस व्यक्ति की भाव—दशा ठीक न हो।

7. व्याख्या में अंत:करण को अधिक महत्त्व दें। याद रहे, अंत:करण तटस्थ होना चाहिए। निर्विचार स्थिति में जाकर ही सही व्याख्या की जा सकती है। आग्रह और जिद में न उलझें। आपको विनम्रतापूर्वक कहना चाहिए 'मुझे जो ओरा दिखाई दिया, उसके अनुसार यह व्याख्या है। हो सकता है कि मेरे देखने और विश्लेषण में कोई कठिनाई हो।'

8. आभामंडल प्रतिक्षण बदलता रहता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आपके मौलिक आभामंडल का केंद्रबिंदु बदल जाएगा। आभामंडल स्पष्ट दिखाई दे रहा है, उसके रंग आदि भी पकड़ में आ रहे हैं; लेकिन वे रंग हलके भूरे व नीले रंग के दिखाई दे रहे हैं। प्रारंभ में चमकते रंग दिखाई न दें तो भी निराश न हों, अभ्यास करते जाएँ। धैर्य का फल भी मीठा होता है। बार—बार अभ्यास से आपको आभामंडल स्पष्ट दिखाई देने लगेगा।

9. आभामंडल का अभ्यास छोड़ें नहीं। सफलता आज नहीं तो कल अवश्य मिलेगी। आशा के साथ आप सफल होंगे, उसमें कोई संदेह नहीं। कारण स्पष्ट है, आभामंडल कल्पित विद्या नहीं, बल्कि तीर्थंकरों ने इसकी व्याख्या की है। आत्मविश्वास के साथ इस कार्य को निरंतर करते जाएँ।

10. तीन सप्ताह का प्रशिक्षण लेने के पश्चात् उस विधि का अभ्यास जारी रखें। जैसे—जैसे अभ्यास परिपक्व होता जाएगा, आप में आत्मविश्वास पैदा होगा और अभ्यास भी आगे बढ़ेगा।

11. एक महत्त्वपूर्ण सूचना की जानकारी के साथ आपको संकल्पबद्ध होना होगा। संकल्प यह है कि किसी के ओरा (आभामंडल) की कुछ घटना ध्यान में आ जाए तो उसे अपने तक सीमित रखना है। जैसे—किसी का अर्बुद (ट्यूमर) ध्यान आ गया या कर्कटार्बुद (कैंसर) का आभास हो गया। रोगी को यह सब बताने से उसके मन में भय उत्पन्न हो जाएगा, इसलिए आभामंडल थेरैपिस्ट को विवेक से बताना चाहिए। किसी गुप्त घटना का ज्ञान आपको हो गया, तो उसे भी सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त न करें।

12. ओरा थेरैपिस्ट को स्वयं की साधना के साथ समत्व व गंभीरता का अभ्यास करना होता है।

13. गोपनीयता की शपथ लेनी और उसे उसी रूप में निभानी भी होती है।

आचार्य के पास कोई शिष्य अपनी भूल का प्रायश्चित्त करने आया। आचार्य ने उसको प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कर दिया; लेकिन आचार्य ने किसी भी परिस्थिति में अथवा अपने प्रिय व्यक्ति को भी उसकी भूल का उल्लेख नहीं किया, न प्रायश्चित्त के संदर्भ में कुछ कहा। यदि कोई ऐसी भूल कर दे तो उसको प्रायश्चित्त ग्रहण करना होता है। आचार्यश्री भिक्षु के पास दूसरे संप्रदाय के साधु आए। उन्होंने अलग से आचार्य भिक्षु के पास प्रायश्चित्त किया। प्रायश्चित्त कर वे चले गए। उनके एक शिष्य ने पूछ लिया, ''किसका प्रायश्चित्त किया था?'' आचार्य भिक्षु ने उपालंभ देते हुए कहा, ''ऐसा पूछना अनधिकार चेष्टा है। दूसरों के प्रायश्चित्त की बात बताई नहीं जाती। आज पूछा है, आगे कभी नहीं पूछना।''

''सत्य! आचार्यप्रवर, ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा।''

शिष्य ने कहा। प्रेक्षा ओरा थेरैपिस्ट को भी अत्यंत गोपनीयता रखनी होती है।

❑

अध्याय— 10

कैसे करें आत्मदर्शन की यात्रा?

- आत्मदर्शन, स्वदर्शन करने की आकांक्षा हर व्यक्ति के चित्त पर उभरती रहती है।
- आत्मदर्शन का पहला पड़ाव है—कायोत्सर्ग।
- शरीर की स्थिरता और शिथिलता में श्वास प्रेक्षा का प्रयोग अत्यंत जागरूकता से होता है।
- मानव शरीर की एक—एक कोशिका में ज्ञान—चेतना जुड़ी हुई है।
- चित्त की निर्मलता के बिना आत्म—साक्षात्कार नहीं हो पाता।

कैसे करें आत्मदर्शन की यात्रा?

आत्मा है, उसके अस्तित्व को इनकार नहीं किया जा सकता; किंतु उसे स्वीकार भी कैसे करें? आत्मदर्शन, स्वदर्शन करने की आकांक्षा हर व्यक्ति के चित्त पर उभरती रहती है। केवल आकांक्षा से काम पूरा नहीं होता है। उसके लिए पुरुषार्थ और पराक्रम भी चाहिए।

कायोत्सर्ग से आत्मदर्शन

आत्मदर्शन का पहला पड़ाव है—कायोत्सर्ग। काया+उत्सर्ग, काया की चंचलता का परित्याग करना। चंचलता, सक्रियता से शरीर की प्रधानता हो जाती है। उससे सुख—दु:ख का अनुभव प्रगाढ़ होने लगता है, मूर्च्छा का चक्र बढ़ जाता है। शरीर केंद्रित होने से व्यक्ति आत्मदर्शन की ओर नहीं बढ़ पाता है। आत्मदर्शन की ओर गतिशील होने के लिए कायोत्सर्ग का गहन अभ्यास करना होता है।

कायोत्सर्ग केवल शरीर का शिथिलीकरण या तनाव—मुक्ति का ही उपाय नहीं है, बल्कि शरीर के प्रति जो ममत्व भाव है, मूर्च्छा है, आसक्ति है, उसको तोड़ना भी है। मूर्च्छा तोड़ने का पहला उपाय है—अपने दृष्टिकोण को ठीक करना। शरीर ही हमारे सामने हर क्षण रहता है। तब चेतना को ऐसा महसूस होता रहता है कि मैं शरीर हूँ। शरीर और चेतना का तादात्म्य भाव ही उसे गहरी आसक्ति में डुबो देता है। मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है—इस भावना से मूर्च्छा, ममत्व प्रगाढ़ हो जाती है। परिणामत: व्यक्ति अपने मूल स्वरूप को विस्मृत कर देता है। कायोत्सर्ग से व्यक्ति जब अनुभव करता है कि शरीर यंत्र की तरह काम कर रहा है, ज्ञान चेतना से अनुभव हो रहा है। मैं शरीर नहीं हूँ, केवल ज्ञान चेतना हूँ।

केवल श्वास आ रहा है, वापस लौट रहा है—ज्यों ही उसे यह स्पष्ट बोध होने लगता है, शरीर और श्वास दो स्थितियाँ हैं। श्वास आना एक स्थिति है। फेफड़ों में श्वास आया, वापस लौटा। इस घटना का साक्षी बना है चेतना का ज्ञान। आत्मदर्शन का दूसरा पड़ाव बना कायोत्सर्ग में श्वास—दर्शन।

कायोत्सर्ग में श्वास—दर्शन

शरीर को सुझावों से तनाव—मुक्त बना, ज्ञान चेतना से अनुभव करना कि श्वास किस तरह भीतर जा रहा है। श्वास के प्रति ज्यों—ज्यों पूर्ण जागरूकता बढ़ती है, व्यक्ति वर्तमान में आ जाता है। वर्तमान में आने के लिए श्वास प्रेक्षा का प्रयोग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। श्वास केवल श्वास ही नहीं है, वह चेतना की जागरूकता बनाए रखने में

महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। श्वास से ही हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका जागरूक और जीवंत होती है। कोशिकाओं को समय—समय पर प्राणवायु मिलने से ही वे जीवंत रहती हैं, अच्छी तरह से कार्य करती रहती हैं। प्राणवायु न मिले तो उनमें स्थित ग्लूकोज से ज्वलन क्रिया नहीं हो सकेगी। ज्वलन क्रिया न हो, तब प्राण ऊर्जा का उत्पादन कैसे होगा? बिना प्राण ऊर्जा के जीवन—प्रवाह कैसे प्रवाहित होगा?

प्राण ऊर्जा से ही समस्त शरीर के अंग प्राणवान् और क्रियाशील बनते हैं। प्राण जीवनी शक्ति है। श्वास प्रेक्षा से श्वास सहज ही दीर्घ हो जाता है। दीर्घ श्वास से जीवनी शक्ति का विकास होता है। जब कायोत्सर्ग में श्वास प्रेक्षा का अभ्यास करते हैं, तब शरीर की स्थिरता और शिथिलता में श्वास प्रेक्षा का प्रयोग अत्यंत जागरूकता से होता है। ज्यों—ज्यों जागरूकता बढ़ती है, व्यक्ति वर्तमान में आ जाता है। वर्तमान के इन विलक्षण क्षणों में शरीर मात्र ढाँचा रह जाता है। केवल श्वास की अनुभूति में श्वास सूक्ष्म होने लगता है। प्रयोक्ता अनुभव करने लगता है, मानो उसका शरीर हवा में तैर रहा है! कुछ समय पश्चात् वह कुंभक हो जाता है। कुंभक की स्थिति में केवल चेतना की अनुभूति ही शेष रह जाती है।

शरीर प्रेक्षा से चेतना—दर्शन

संपूर्ण मानव शरीर चेतन है। उसकी एक—एक कोशिका में ज्ञान—चेतना जुड़ी हुई है। संपूर्ण शरीर में स्पर्श संज्ञान है, कानों में शब्द संज्ञान है, चक्षु में रूप संज्ञान है, नाक में गंध संज्ञान है, जीभ में रस संज्ञान है। पाँचों इंद्रियों से होनेवाले संज्ञान से मन में प्रियता—अप्रियता का भाव पैदा होता है। मन स्मृति, चिंतन और कल्पना में उलझकर राग—द्वेष में प्रवृत्त होता है। मन की चंचलता से शरीर में स्थिरता नहीं रह पाती। बिना शरीर की स्थिरता के श्वास मंद और दीर्घ नहीं हो पाता। श्वास की मंदता और दीर्घता के बिना मन स्थिर नहीं हो पाता। मन की स्थिरता के बिना भावों की उज्ज्वलता नहीं हो पाती। भावों की उज्ज्वलता के बिना चित्त निर्मल नहीं हो पाता। चित्त की निर्मलता के बिना आत्म—साक्षात्कार नहीं हो पाता। इसे एक लघु दृष्टांत से समझा जा सकता है। एक बालक पानी के बरतन को बार—बार हिला रहा है और अपनी माँ से आग्रह कर रहा है—माँ, पानी में मेरा मुँह नहीं दिखाई दे रहा है। माँ ने कहा—बेटा, बरतन से जरा दूर हट जा। जब तक बरतन हिलेगा, पानी हिलेगा। पानी हिलता रहेगा, तब कैसे मुँह देख पाओगे? बरतन स्थिर कि पानी स्थिर! पानी की स्थिरता के साथ गर्दिश नीचे जम जाएगी। स्थिर पानी में मुँह तत्काल दिखने लगा। बालक बोला—यह रहा मेरा मुख। माँ ने समझाया कि बेटा, स्थिर पानी में ही मुख दिखाई देता है।

शरीर एक बरतन है, पानी उसमें श्वास है। मन की चंचलता गर्दिश है। शरीर को स्थिर करो, श्वास को मंद करो। अपने आपको देखने की प्रेक्षा करो। अपना स्वरूप व्यक्त होने लगेगा। अपने आत्मस्वरूप का न आकार है, न रूप। वह अरूपी सत्ता है; अंतर्दृष्टि को जाग्रत् करके ही उसे अनुभव व प्राप्त किया जा सकता है।

अंतर्यात्रा से जागती है अंतर्दृष्टि

अंतर्यात्रा अपने भीतर प्रवेश की प्रक्रिया है। अध्यात्म खोजियों ने अपनी चेतना को पाने के लिए हठयोग का सहारा लिया। हठयोगवेत्ताओं ने शरीर के तंत्र को सुगठित बनाने के लिए आसन, प्राणायाम, धारणा का सहारा लिया। आसन—प्राणायाम करते समय उन्हें प्राणपथ का अनुभव हुआ। प्राण का यह पथ मेरुदंड के परिपार्श्व और मध्य में चमकता हुआ रज्जु सा अनुभव हुआ। यह पथ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के नाम से पहचाना जाता है। इस पथ में प्राण जब तक अधोगामी होता है, प्राणी शरीरधर्मा अर्थात् शारीरिक सुख की ओर अग्रसर होता है। वह खाना

—पीना, ऐश—आराम करना, यही जीवन का लक्ष्य बना लेता है।

जब प्राण ऊर्ध्वमुखी बनने लगता है, अध्यात्म की भावना पुष्ट होती है। जब प्राण आनंद केंद्र पर केंद्रित होता है, तब करुणा व दया का भाव पुष्ट होने लगता है। विशुद्धि केंद्र पर जब प्राण सक्रिय होता है, तब कला, कविता, संगीत का विकास होता है। आज्ञाचक्र पर प्राण सक्रिय होता है, तब अंतर्दृष्टि जागने लगती है। पूर्वाभास अनुभव में आने लगता है। जब सहस्रार ज्ञान—केंद्र पर प्राण सक्रिय होता है, तब विवेक प्रकट होने लगता है।

ध्यान में संकल्प से प्राण को जब शक्ति केंद्र (मूलाधार) से सुषुम्ना पथ से नीचे से ऊपर ले जाते हैं, तब वह आनंद केंद्र, विशुद्धि केंद्र को स्पर्श करता आज्ञाचक्र (दर्शन केंद्र) और सहस्रार की ओर गतिशील होता है। उससे उसका अध्यात्म पथ सक्रिय होता है और आत्मदर्शन की यात्रा प्रारंभ होती है।

आत्मानुभूति का पथ है संकल्प

संकल्पजा: सृष्टि:—संकल्प से सृजन होता है। आत्मानुभूति आकाश में पदचिह्नों का अनुभव है। गौतम बुद्ध ने तपस्या से अपने शरीर को कृश कर दिया। यहाँ तक कि शरीर में उठने—बैठने की क्षमता भी शेष नहीं रही। क्षुधा से शरीर प्रताड़ित हो गया; लेकिन संकल्प बलवान् था। पद्मासन में स्थिर होकर संकल्प कर लिया—आज मैं बोधि हुए बिना इस आसन से उठूँगा नहीं, चाहे शरीर नष्ट हो जाए, जीर्ण—शीर्ण हो जाए। इस संकल्प ने उनको ध्यान—पथ की गहराई का अनुभव करवाया और वह परम बोधि को प्राप्त होगए।

भगवान् महावीर ऋजुबालिका नदी के किनारे, गोदुहासन में शाल्मली पेड़ के नीचे ध्यानस्थ, ध्यान की उत्कृष्ट श्रेणी का आरोहण कर ज्ञानावरण आदि कर्मों का क्षय कर कैवल्यज्ञान को उपलब्ध हो गए। उस समय उन्होंने कैवल्य ज्ञान से चेतना का अनुभव किया, आत्मा का अनुभव किया। आत्मा है, आत्मा थी, आत्मा रहेगी। इस आत्मानुभव से ही प्रकट हुआ वीतराग पथ। यही अध्यात्म यात्रा है, स्वयं का अनुभव है। यह दृढ़ संकल्प से ही अभिव्यक्त होता है।

आत्मानुभूति स्व—संवेद्य है। उसे स्वयं अनुभव किया जा सकता है। उस आत्मानुभव को कहा नहीं जा सकता। वाणी उसे व्यक्त नहीं कर सकती, लेकिन उस अनुभूति से व्यक्ति आनंद सागर में निमज्जित हो जाता है। वह आनंदानुभूति आँखों की चमक से प्रकट होती है, प्राण के स्पंदन से प्रकट होती है। यह गूँगे का गुड़ है। गूँगे आदमी ने गुड़ खाया। वह नाच रहा है। नाचना केवल शरीर और पैरों से ही नहीं होता है, अपितु उससे रोम—रोम और आत्मप्रदेश तक पुलकित हो जाते हैं।

प्राण—प्रयोग में प्राण को शरीर में ताँबे के खंभे पर एंटिना के माध्यम से ब्रह्मांड की ऊर्जा को आकर्षित करते हैं। प्राण पूरे शरीर में व्याप्त हो जाता है। प्राण की धारा जब दाएँ से बाएँ, बाएँ से दाएँ घूमने लगती है, आगे से पीछे पूरे शरीर में यात्रा करने लगती है, जैसे विद्युत् तरंगें डायनेमो में तारों के माध्यम से गतिशील होती है, तब भीतर मध्य में रहा हुआ पिंड मैगनेट (चुंबक) बन जाता है। यह चुंबकीय शक्ति शरीर के मध्य काल्पनिक ताँबे के खंभे से ऊर्जा संपूर्ण ब्रह्मांड में फैलने लगती है। तब व्यक्ति महसूस करता है कि वह संपूर्ण ब्रह्मांड में फैल गया है। ऐसी स्थिति में जो अनुभूति होती है, उसे कुछ भी कहो—आत्मतत्त्व, परमतत्त्व। उसे शब्दों से बताया नहीं जा सकता, केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

सारांश में, यही कहा जा सकता है कि कायोत्सर्ग, श्वास—प्रेक्षा तथा चित्त की निर्मलता के माध्यम से आत्मदर्शन का अनुभव किया जा सकता है।

❑

अध्याय— 11

आत्मा का अनुभव है अध्यात्म

- अध्यात्मविदों का शाश्वत प्रश्न है—आत्मा को जाने बिना उसका साक्षात् कैसे होगा?
- वीतरागता का बोध ही पवित्र चेतना का अनुभव है। पवित्रता का अनुभव आत्मा का दर्शन है।
- काया के साथ अनंत—अनंत जन्मों का संबंध होने से प्राणी काया को ही चेतना के रूप में अनुभव करने लगता है।
- चेतना इंद्रियों का विषय नहीं है। अध्यवसाय एवं भाव को पकड़ा नहीं जा सकता है।
- ज्ञाता—द्रष्टा का बोध आत्मा की अनुभूति है।

आत्मा का अनुभव है अध्यात्म

आत्मा है, उसे कैसे जानें? अध्यात्मविदों का यह शाश्वत प्रश्न है। आत्मा को जाने बिना कैसे उसका साक्षात्कार होगा? केवल मान सकते हैं, जानें कैसे? मानना अलग बात है और जानना अलग बात है। माना किसी को भी जा सकता है, चाहे फिर वह आत्मा हो, परमात्मा हो, परमाणु हो, पे्रम हो या पवित्रता। आत्मा के संदर्भ में 2600 वर्ष पूर्व भगवान् महावीर स्वामी ने अग्नि—होम—भवन में अपना वर्षावास व्यतीत किया। वे साधना में संलग्न थे। उनकी तपस्या से प्रभावित हो यक्ष पूर्णभद्र और मणिभद्र रात्रि को उनकी उपासना किया करते थे। स्वातिदत्त ने सोचा, महावीर ऐसा क्या जानते हैं, जो उनकी उपासना देवतागण करते हैं? वह भगवान् महावीर के पास पहुँचा और कई प्रश्न किए।

स्वातिदत्त—आत्मा का स्वरूप क्या है?

महावीर—जो मैं हूँ, वही आत्मा है।

स्वातिदत्त—आत्मा कैसी है?

महावीर—वह अरूपी और अत्यंत सूक्ष्म है, जिसे हम इंद्रियों से नहीं जान सकते हैं।

स्वातिदत्त—क्या वह शब्द, गंध, हवा है?

महावीर—नहीं, उसे हम इंद्रियों से नहीं जान सकते हैं।

आत्मा इंद्रियों द्वारा ग्रहण नहीं है। वह ग्राहक है, ज्ञाता है। ज्ञाता बाहर नहीं रहता, वह भीतर रहता है। अंत:करण में है। अंत:करण को जानना इतना सहज नहीं है। उसके लिए परम पुरुषार्थ की अपेक्षा होती है। आत्मा के दर्शन के लिए तटस्थता, वीतरागता आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान का तात्पर्य है—राग—द्वेष के बिना केवल वर्तमान का अनुभव। प्रेक्षा से ज्यों ही वर्तमान में चेतना आती है, व्यक्ति तटस्थ और वीतराग स्थिति में पहुँच जाता है। वीतरागता का बोध ही पवित्र चेतना का अनुभव है। पवित्रता का अनुभव आत्मा का दर्शन है। आत्म—साक्षात्कार ही अध्यात्म में प्रवेश है।

आत्मा है कोहिनूर हीरा

आत्मा का अनुभव पदार्थ के अनुभव जैसा नहीं है। पदार्थों में हीरा बेशकीमती है। हीरे का दर्शन (देखना) सहज नहीं है। हीरे को कोई हाथ में लिये नहीं घूमता है। बेशकीमती हीरे को जौहरी अंतरतल भूगर्भ में विशिष्ट अलमारी

की दराज में कीमती डिबिया में मखमल के कपड़े में समेटकर रखता है। किसी को हीरा देखना, खरीदना हो तो सबसे पहले उसके मालिक—जौहरी से संपर्क करना होता है।

जौहरी ग्राहक से कहता है, ''मेरे साथ चलो, मैं आपको हीरा दिखाता हूँ।''

वह उसे अपने मकान पर ले गया। उसने कहा, ''मुझे आपका मकान नहीं देखना है, मुझे तो हीरा खरीदना है।'' वे मकान के भीतर आए उसे भीतर कमरे में ले गया। ''मुझे कमरा नहीं देखना है।'' वह एक बड़ी तिजोरी के ताले को खोलने लगा। ''मुझे तिजोरी को नहीं देखना है। मुझे हीरा खरीदना है।'' उसने अलमारी खोलकर अंदर की दराज से एक सुंदर सी डिबिया निकाली। डिबिया से मखमली कपड़ा उतारा। ''श्रीमान, मुझे तो हीरा दिखाएँ।''
''आप धीरज रखें, अभी हीरा निकाल रहा हूँ।'' कपड़े को ज्यों ही हटाया, चमचमाता बेशकीमती हीरा उसकी हथेली पर था। बहुमूल्य हीरे को कोई जेब में डालकर नहीं घूमता है। उसको सुरक्षित स्थान पर रखते हैं। ऐसे ही आत्म—साक्षात्कार चलते—फिरते सड़क पर नहीं होता है। उसके लिए पुरुषार्थ करना होता है, तपना होता है। साधना के द्वारा साक्षात्कार करना होता है।

सर्वप्रथम कायोत्सर्ग का अभ्यास किया जाता है। कायोत्सर्ग से शरीर का शिथिलीकरण किया जाता है। गहन कायोत्सर्ग में तद्रूपवती धारणा के द्वारा भेद विज्ञान का अनुभव किया जाता है कि आत्मा और शरीर अलग—अलग हैं। भेद विज्ञान के अनुभव के साथ अंतर्यात्रा का प्रयोग किया जाता है, जिसमें प्राण ऊर्जा को ऊर्ध्वमुखी बनाया जाता है। उसके साथ वर्तमान में रहने के लिए दीर्घश्वास प्रेक्षा से, समवृत्ति श्वास प्रेक्षा से एकाग्रता के साथ तटस्थता का अनुभव किया जाता है। उसके पश्चात् शरीर प्रेक्षा का अभ्यास किया जाता है। शरीर प्रेक्षा से चैतन्य का बोध स्थूल रूप से होता है। उसके पश्चात् चैतन्य केंद्रों पर विशेष अभ्यास के द्वारा चैतन्य केंद्रों को जाग्रत् किया जाता है। चैतन्य केंद्रों के स्थानों पर रंगों के ध्यान द्वारा लेश्याध्यान का अभ्यास किया जाता है। स्व की अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए अनित्य अनुप्रेक्षा का अभ्यास करना होता है।

काया के साथ अनंत—अनंत जन्मों का संबंध होने से प्राणी काया को ही चेतना के रूप में अनुभव करने लगता है। जब तक यह चक्र टूटता नहीं है, व्यक्ति शरीर से अपने आपको भिन्न अनुभव करना नहीं चाहता है। एक बार ध्यान से भेद विज्ञान हो जाता है। उसकी स्मृति सतत बनी रहती है। उस स्मृति को पुष्ट बनाए रखने के लिए तद्रूपवती भावना का प्रयोग किया जाता है, जिससे सदैव आत्मा का बोध बराबर बना रहता है।

आत्म—साक्षात्कार और लेश्याध्यान

चेतना इंद्रियों का विषय नहीं है। अध्यवसाय एवं भाव को पकड़ा नहीं जा सकता है। भाव जब लेश्या (रंगीन भावधारा) में रूपांतरित होती है, तब वह त्राटक के अभ्यासी की पकड़ में आ सकती है। उन रंगों की व्याख्या भी श्रमसाध्य है। आभामंडल के रंग प्रति मिनट बदलते रहते हैं। व्यक्ति के भाव बदलते हैं, भाव के साथ लेश्या भी बदलती है। लेश्या बदलती है, तब मन के विचार और क्रिया में भी परिवर्तन हो जाता है। इन सबकी व्याख्या कर निष्कर्ष निकालना बिना कुशल प्रशिक्षक के संभव नहीं है।

लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। इसकी खोज आत्मा के अनुभवों से जुड़ी हुई है। साधक स्व का बोध करने के लिए जब गहन ध्यान में उतरता है, तब उसे शरीर के चारों ओर रंगीन रश्मियाँ नजर आती हैं। रंगीन रश्मियाँ भावों के उतार—चढ़ाव के साथ बदलती हैं। 'लेश्या' शब्द का अर्थ है—आणविक आभा, कांति, प्रभा या छाया। पौद्गलिक प्रभावों से प्रभावित होनेवाले चेतना के परिणामों को 'लेश्या' कहा गया है। सरलता से समझने के लिए लेश्या को 'रंगीन भावधारा' कहा जा सकता है।

भगवान् महावीर ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' के 34वें अध्ययन में लेश्या का विस्तार से विवेचन किया है। वहाँ लेश्या के नाम, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, परिणाम, स्थान, गति और आयुष्य का निरूपण किया गया है। ऐसे लेश्या के तीन प्रकार किए जाते हैं। प्रत्येक पदार्थ की अपनी आभा होती है, चाहे वह जड़ पत्थर ही क्यों न हो। यह प्रथम प्रकार की लेश्या है। इसी तरह शरीर के चारों ओर फैली हुई छाया को भी 'द्रव्यलेश्या' कहा गया है। यह दूसरे प्रकार की लेश्या है। भाव एवं आत्मा के परिणामों से जुड़ी लेश्या को 'भावलेश्या' कहा गया है। वह चेतना का ही अंश है। वहीं कृष्ण, नील, कापोत को 'अधर्मलेश्या' और तेजस, पद्म और शुक्ल को 'धर्मलेश्या' कहा गया है। प्रथम तीन लेश्याओं के प्रभाव से अशुभ और क्रूर भाव प्रकट होते हैं, जबकि अंतिम तीन लेश्याओं से शुभ भाव पैदा होते हैं।

लेश्या ध्यान द्वारा भाव—शुद्धि होती है। भाव—शुद्धि से साधना का विकास होता है। व्यक्ति जितेंद्रिय होता है। पद्म, शुक्ल लेश्याएँ व्यक्तित्व का विकास करती हैं। कृष्ण और नील लेश्या के परमाणु भावना से आकर्षित करते हैं, तब अजितेंद्रिय बनते हैं। दोनों परमाणु एक—दूसरे के विरोधी हैं। कृष्ण, नील और तेज का भी प्रभाव होता है। चेतना को प्रभावित करनेवाली लेश्या है। भावों को प्रभावित करनेवाली लेश्या है। वातावरण को प्रभावित करनेवाली लेश्या (रंग) है।

जब तन्मयता से प्रशस्त रंगों का ध्यान करते हैं, तब तन्मयता आती है और विचार व भाव रूपांतरित होते हैं, सुखद स्पंदन पैदा होने लगते हैं। साथ ही मैत्री की मंगल भावना विकसित होने लगती है। कषाय दूर चली जाती है। मूर्च्छा टूटती है। व्यक्ति का व्यक्तित्व श्रेष्ठ बनने लगता है। उसके लिए पद—प्रतिष्ठा भी कोई अपेक्षा नहीं रखती।

लेश्या जब पवित्र होती है, तब उसका व्यवहार भी बदल जाता है।

तेजस—लेश्या का रंग प्रात:कालीन सूर्य जैसा होता है, शुद्ध स्वर्ण कुंदन जैसा होता है। दर्शन केंद्र (अस्तम्यक) पर अरुण रंग का ध्यान करते हैं—उससे सूर्य का साक्षात् होता है। अनायास आदतों में परिवर्तन घटित होने लगता है। आनंद भीतर प्रस्फुटित होने लगता है। डॉ. डीग्लेंडी पेज जब लेश्या ध्यान का प्रयोग कर रहे थे, तब आज्ञाचक्र पर अरुण रंग का ध्यान करते समय स्पंदन प्रकट होने लगे। आनंद रोम—रोम में प्रस्फुटित होने लगा। ध्यान की पूर्णता पर वे बोल उठे, ''ऐसा आनंद जीवन में पहली बार अनुभव हुआ। यह आनंद किसी पदार्थ से नहीं मिला। यह आनंद ध्यान से मिला। मैंने सोच रखा था कि पदार्थ में सुख है। मेरा भ्रम मिट गया। आनंद पदार्थ में नहीं, स्वयं के भीतर है।''

शुक्ल—लेश्या का रंग श्वेत है। पूर्णिमा की चाँदनी श्वेत होती है। श्वेत रंग के ध्यान से आवेश—आवेग संतुलित होते हैं, भावधारा निर्मल बनती है। साधक आत्मरमण की दिशा में तत्पर हो जाता है। शुक्ल ध्यान ऐसी प्रक्रिया है, जिससे भव के बंधन टूटते हैं। शुक्लध्यानी ध्यान के द्वारा अपने समस्त कर्मों को क्षीण कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है।

लेश्या से जहाँ परिवर्तन घटित होता है, वहाँ आत्मिक सुख की अनुभूति भी होती है। आत्मा के साक्षात्कार की प्रक्रिया लेश्या से साकार होती है। शरीर—चेतना, इंद्रिय—चेतना, भाव—चेतना, चित्त की चेतना आदि चेतना के स्तरों पर यात्रा करते—करते हम परम अवस्था तक पहुँच जाते हैं।

आत्म—साक्षात्कार कोई ऐसी साकार वस्तु नहीं है, जिसे हाथ में ठहरे हुए आँवले की तरह प्रत्यक्ष देखा जा सके। वैसे आत्मा को साक्षात् देख लेंगे, यह भ्रांति ही होगी। आत्मा के साक्षात्कार का तात्पर्य आत्मानुभूति व विकल्पों की परिसमाप्ति है। उससे मूर्च्छा टूटती है। मूर्च्छा के टूटने से चेतना में विवेक जाग जाता है। विवेक जागरण से सत्—असत् को पृथक् किया जा सकता है। निकृष्ट और श्रेष्ठ का भेद समझ सकते हैं। उनका पृथक्करण ही आत्मा की अनुभूति की ओर गतिशील बनाना है। ऐसे स्व की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। इंद्रिय चेतना से परे जो बोध

होता है, वह भी आत्मीय अनुभूति है। ऐसे मन की चेतना से परे बोध करना भी आत्मानुभूति है। चित्त चेतना से स्वयं का अनुभव भी आत्मानुभूति है। शुक्लध्यान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। प्रेक्षाध्यान में ज्ञाता—द्रष्टा का बोध भी आत्मा की अनुभूति है।

लेश्या ध्यान की उपलब्धि

- निर्विकल्प चेतना का विकास
- अव्यथ चेतना का विकास
- अमूढ़ चेतना का विकास
- विवेक चेतना का विकास
- व्युत्सर्ग चेतना का विकास
- लेश्या ध्यान से आभामंडल का निर्माण स्वस्थ और शक्तिशाली बनता है।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि आत्मा से साक्षात्कार करना ही अध्यात्म है। वीतरागता का बोध करना भी अध्यात्म का दूसरा पर्याय है। आनंद पदार्थ में नहीं, अंतर में निहित है।

❑

अध्याय— 12

आत्मविद्या परम विद्या

● दो तरह की विद्याएँ हैं—परा विद्या और अपरा विद्या।

● परा विद्या को आत्मविद्या कहा जाता है। असि, मसि, कृषि से लेकर जीवन—यापन की समस्त विद्याएँ अपरा विद्या के अंतर्गत आती हैं।

● राग—द्वेष से रहित केवल वर्तमान का अनुभव प्रेक्षाध्यान है।

● अनुप्रेक्षा का कार्य है, बुरी आदतों का निरसन और श्रेष्ठ आदतों, मूल्यों, आदर्शों का जीवन—व्यवहार में अवतरण।

● न चिंतन, न स्मृति और न कोई कल्पना, फिर भी बिना मन के कोई भीतर अनुभव कर रहा है, वह कौन है? अंदर से आवाज फूटती है—'अंतरात्मा'।

आत्मविद्या परम विद्या

दो तरह की विद्याएँ हैं—परा विद्या और अपरा विद्या। दोनों विद्याओं का अपने—अपने क्षेत्र में विशेष महत्त्व है। परा विद्या को आत्मविद्या तथा अपरा विद्या को लौकिक विद्या कहा जाता है। असि, मसि, कृषि से लेकर जीवनयापन की समस्त विद्याएँ अपरा विद्या के अंतर्गत आती हैं। आत्म—विशुद्धि की जो विधियाँ हैं, वे सब आत्मविद्या के अंतर्गत आती हैं।

दोनों विद्याओं का अपने—अपने क्षेत्रों में महत्त्व है। फिर भी, शास्त्रकारों ने आत्मविद्या को महत्त्व दिया। लौकिक विद्याओं से आप भौतिक सुविधाएँ प्राप्त कर सकते हैं, किंतु आत्मविद्या के बिना ये सारी विद्याएँ व्यर्थ हैं, क्योंकि जब पदार्थ ही नश्वर है, तब उसे प्राप्त करके ही क्या होगा? अंतिम यात्रा में पदार्थ का कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि अपरा विद्या त्राण नहीं दे सकती, तब उसका क्या उपयोग? आत्मविद्या व्यक्ति के जीवन में अंतिम यात्रा तक साथ रहती है। वह चेतना स्वरूप है, इसलिए आत्मज्ञानियों ने आत्मविद्या को ही श्रेष्ठ माना और साथ में यह भी कहा कि अपरा विद्या संसार को चलाने के लिए आवश्यक है।

सांसारिक व्यक्ति अनुभव करता है कि आत्मविद्या से पेट नहीं भरता है। जब पेट भरा होता है, तब ही आत्मविद्या याद आती है, अन्यथा रोटी में ही आत्मा दिखने लगती है। आत्मा है, उसको कैसे अनुभव किया जाए, ये सारी विधियाँ भौतिक हैं; किंतु उससे आत्मजगत् की ओर इशारा होता है, गति होती है। इसलिए परा विद्या से भी इनकार नहीं किया जा सकता। एक बड़ी विचित्र विडंबना है, जो भी ज्ञानपक्ष है, वह आत्मविद्या का ही पक्ष है, वह आत्मविद्या का ही अंश है। क्षयोपशम भाव है, यहाँ तक कि चोर की चोरी करने की कला भी ज्ञानावरण का क्षायोपशमिक भाव है। क्षायोपशमिक भाव आत्मा का ही गुण है। अपरा विद्या को भले ही लौकिक विद्या कहें। वस्तुत: अपरा विद्या का ज्ञानात्मक पक्ष आत्मविद्या है। उसे आत्मविद्या से कैसे अलग कर सकते हैं?

अपरा विद्या एवं आत्मविद्या में मात्र स्थूल रेखा से भेद किया गया है। विद्या विद्या होती है, उसमें भेद नहीं किया जा सकता है। मेरी यह विनम्र सोच है। फिर भी, अनेकांत के साधक को कोई कठिनाई नहीं हो सकती। यहाँ घट है और नहीं भी है। घट का होना, उसके अस्तित्व को स्वीकार करना है; लेकिन यह घट मिट्टी का है, सोने का नहीं है। यह ग्रीष्म ऋतु का है, सर्दी ऋतु का नहीं है। घट है भी और नहीं भी। हम पुन: 'अस्ति—नास्ति' की इन

विद्याओं में न उलझें और यह न कहें कि इस दृष्टि से घट है और इस दृष्टि से वह घट नहीं है।

आत्मविद्या की यात्रा भी अपरा विद्या की सीढ़ियों के बिना कैसे हो सकती है? जैसे स्वीमिंग पूल में छलाँग लगानी है, तो उसके लिए सीढ़ियों से पुल तक चढ़ते हैं। वह स्वीमिंग पूल नहीं है। स्वीमिंग पूल में छलाँग के लिए पुल पर सीढ़ियों से जाना होता है। ऐसे ही आत्मविद्या में प्रवेश के लिए अपरा विद्या की सीढ़ियों पर चढ़कर जाना होता है। सबसे पहली सीढ़ी है शरीर की स्थिरता, कायोत्सर्ग और पूर्ण जागरूकता। शरीर के प्रति जो ममत्व है, उसका परिहार कर ही आत्मविद्या में प्रवेश कर सकते हैं।

शरीर स्थिर है, शिथिल है, चैतन्य पूरी तरह से जाग्रत् है। केवल श्वास आ रहा है और लौट रहा है। ज्यों ही श्वास की डोरी पर चित्त/चेतना को एकाग्र करेंगे, तो सहज ही श्वास के साक्षी बनने लगते हैं। श्वास के साक्षी बनने का तात्पर्य है कि आपकी ज्ञान क्षमता श्वास पर एकाग्र हो रही है। यह ज्ञान क्षमता चेतना की एक रश्मि है। चेतना की इस रश्मि से आप चेतना के ज्ञान को साक्षी द्रष्टा, ज्ञाता बनाकर 'कैवल्य ज्ञान' सिर्फ अनुभव कर रहे हैं। आप वर्तमान में हैं, राग—द्वेष से रहित हैं। राग—द्वेष से रहित केवल वर्तमान का अनुभव प्रेक्षाध्यान है। श्वास प्रेक्षा से वर्तमान में आते हैं। शरीर प्रेक्षा से भी वर्तमान में आते हैं। शरीर में जो भी स्पंदन या कंपन हो रहा है, उसे केवल अनुभव करना, वर्तमान में रहना शरीर प्रेक्षा है। ऐसे ही चैतन्य केंद्र प्रेक्षा में इंद्रियों, ग्रंथि तंत्रों के स्थान को 'चैतन्य केंद्र' कहा गया है। ये शरीर के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। साथ ही योग इन्हें 'चक्र' कहता है। इसी तरह लेश्याध्यान (कलर मेडिटेशन) रंगीन भावधारा के अनुभव द्वारा अपने स्वभाव एवं भाव को बदला जा सकता है। इन सबके साथ 'अनुप्रेक्षा' का प्रयोग करवाया जाता है। 'अनुप्रेक्षा' शब्द बता रहा है 'प्रेक्षा' के बाद में करनेवाला प्रयोग। दूसरे शब्दों में, अनुप्रेक्षा, बार—बार प्रेक्षा से किए अनुभवों को दोहराना, अभ्यास करना, जिससे जो सच्चाई हमने जानी थी कि यह शरीर अनित्य है, परिवर्तनशील है। यह शरीर ही नहीं, ये नाम, रूप, रोग, शोक, क्लेश आदि सभी बदलने वाले हैं। अनुप्रेक्षा से आदतों को बदला जा सकता है, नई आदतों का निर्माण किया जा सकता है। अनुप्रेक्षा दोनों कार्य करती है—बुरी आदतों का निरसन और श्रेष्ठ आदतों, मूल्यों, आदर्शों का जीवन—व्यवहार में अवतरण या निर्माण।

इन सबके अभ्यास से पूर्व आसन, प्राणायाम, मुद्रा, संकल्प आदि से ध्यान की पूर्व तैयारी करते हैं। जिस तरह स्वीमिंग पूल से छलाँग लगाकर (तालाब) टैंक में छलाँग लगाते हैं; आसन, श्वास, मुद्रा व संकल्प के पश्चात् ध्यान में प्रवेश करते हैं, उसके लिए कायोत्सर्ग, अंतर्यात्रा, श्वास प्रेक्षा और ज्योति—केंद्र प्रेक्षा के द्वारा सघन ध्यान में प्रवेश कर चेतना के मूल केंद्र तक पहुँच जाते हैं। जहाँ कैवल्यज्ञान है, शांति (आनंद) है। चेतना के अस्तित्व को सत् कहा जाता है। ज्ञान को 'चित्' तथा शांति को 'आनंद' कहा जाता है। इसका तात्पर्य हुआ कि आप शरीर नहीं, 'सत्—चित्—आनंद' स्वरूप आत्मा हैं। आत्मा की अनुभूति के लिए हमें श्वास की जानकारी, श्वास के साथ स्वर का अनुभव, स्वर के अनुभव से चंद्र स्वर, सूर्य स्वर, सुषुम्ना स्वर को जाना। इनको जानकर इनमें बहनेवाले पाँच तत्त्व—पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश की पहचान की जाती है। कोई तत्त्व बिना वर्ण (रंग) के नहीं होता है। पंचतत्त्व के बिना शरीर का निर्माण नहीं होता है। 'पंचतत्त्व' एवं 'पंचवर्ण' से बना यह शरीर मृत्यु होने पर पंचतत्त्व में विलीन हो जाता है। प्राण निकला कि देह जड़ बन जाती है। देह में रहनेवाली चेतना गई, तब यह शरीर भी निर्जीव रह जाता है। शरीर निर्जीव हुआ, पंचतत्त्व, पंच रंग भी राख के रूप में रूपांतरित हो गए। राख में भी पाँच तत्त्व हैं और पाँचों रंग हैं।

शरीर केवल शरीर नहीं है, उसके साथ चेतना भी जुड़ी हुई है। चेतना के साथ जड़ शरीर भी है। जड़ता और चेतनता को कैसे पृथक् कर सकते हैं? उसके लिए सबसे पहले है, जो चेतना इंद्रियों के माध्यम से बाहर पदार्थ की

तरफ जाती है, श्रवण, दर्शन, गंध, रस और स्पर्श के द्वारा मन चेतना को साथ लेकर बाहर सुख खोजता रहता है। जबकि सच्चाई यह है, मूर्च्छा चेतना को बहिरात्मा बनाकर बाहर भटकाता है। ज्ञानियों ने उसे बहिरात्मा कहा है। जब वह सद्‌गुण के संयोग से सर्वेंद्रिय—संयम मुद्रा सीखकर अंतर की ओर उन्मुख होता है, बाहर शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श में सुख का आभास करता था, उसे जब उन्मुख किया, वहाँ भीतर न शब्द है, न रूप, न गंध, न रस और न ही कोई स्पर्श है, ऐसी परिस्थितियों में बिना शब्द, रूप आदि के भीतर शांति का अनुभव होता है। यह शांति कहाँ से आती है? बिना पदार्थ के उसे शांति का अनुभव होता है, तब उसे सुखद आश्चर्य होता है। एक क्षण में चेतना भीतर गई और शांति व आनंद का अनुभव हुआ। यह अनुभव कौन करा रहा है? न चिंतन, न स्मृति और न कोई कल्पना, फिर भी बिना मन के कोई भीतर अनुभव कर रहा है! वह कौन है? अंदर से आवाज फूटती है —'अंतर आत्मा', कैवल्यज्ञान'। अंतरात्मा में सत्, चित् और आनंद है। यदि तीन मिनट सत्—चित्—आनंद में रह सकते हैं, तो 30 मिनट, 3 घंटा सत्—चित्—आनंद में रहें, इसमें कौन सा आश्चर्य है? कोई कठिनाई भी नहीं। यही है अंतरात्मा से परमात्मा में प्रवेश और स्थिति। बहिरात्मा से अंतरात्मा और फिर परमात्मा।

बहुत छोटी सी सहज यात्रा है आत्मा से परमात्मा तक की। मूर्च्छावश हम लोगों ने परमात्मा को अपने से भिन्न समझने का प्रयास किया। अरे, मैं ही हूँ परमात्मा। तब सारे भेद 'अज्ञान' मूर्च्छा दूर जाती है। व्यक्ति अपने स्वरूप में आनंदित होकर 'आनंदम्, अहो आनंदम्, अहो आनंदम्' में झूमने लगता है।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि परा विद्या से आत्मदर्शन किया जा सकता है। इसके माध्यम से अनुप्रेक्षा का भी विकास किया जा सकता है। इस विद्या से आदर्श जीवन—शैली का भी निरूपण किया जा सकता है।

❑

अध्याय— 13

लेश्याध्यान : स्वरूप

- लेश्याध्यान जैन साहित्य का पारिभाषिक शब्द है, जिसका तात्पर्य है—रंगीन भावधारा।
- शुभ भावों से निकलनेवाली रश्मियाँ—तेजस, पद्म और शुक्ल लेश्या कहलाती हैं।
- अशुभ भावों से निकलनेवाली रश्मियाँ मलिन होती हैं, जो कापोत, नील और कृष्ण कहलाती हैं।
- आभामंडल की तरंगें भाव, मन और शरीर की स्थिति का वर्णन करती हैं।
- लेश्याध्यान से भावों का रूपांतरण होता है, जिससे ध्यान की गहनता में प्रवेश पाते हैं।

क्या है लेश्या

लेश्याध्यान जैन साहित्य का पारिभाषिक शब्द है, जिसका तात्पर्य है—रंगीन भावधारा। संसारी प्राणी की चेतना कर्म शरीर से आवृत्त रहती है। चेतना के स्पंदन और प्रकंपन, साथ ही कर्म वर्गणाओं के स्पंदन से भावों में बदलाव आता है। भावों के अनुरूप रंग स्पंदित होते हैं। वे सूक्ष्म शरीर तेजस शरीर से निकलनेवाली रश्मियाँ हैं। ये स्थूल शरीर के चारों ओर फैल जाती हैं। फैली हुई रंगीन रश्मियों को 'लेश्या' कहा गया है।

जैन पारिभाषिक शब्दकोश में 'लेश्या' को परिभाषित करते हुए लिखा गया है— 'लेश्या—चैतन्य की रश्मि, तेजस शरीर के साथ कार्य करनेवाली चेतना।' प्रशस्त—अप्रशस्त भावधारा है, जिसमें हेतुभूत कृष्ण यावत् शुक्ल पुद्गल प्रयोग में आते हैं। लेश्या को जहाँ अंत:करण की वृत्ति कहा है, वहाँ कृष्ण आदि पुद्गलों से आत्मा के परिणाम रंगों में प्रतिबिंबित होते हैं। उस पुद्गल समूह की आभा को 'द्रव्यलेश्या' कहा गया है।

लेश्या केवल अंत:करण की प्रवृत्ति ही नहीं है, प्रशस्त—अप्रशस्त पुद्गल समूह की रंगीन भावधारा भी है, जिसे आभामंडल (ओरा) कहा गया है। जो भौतिक है, उसका प्रभाव भी चेतना को प्रभावित करता है। बाहर का पुद्गल समूह और वातावरण भी लेश्या और भावधारा को प्रभावित करता है। दोनों का परस्पर गहरा संबंध है। लेश्या भौतिक और अभौतिक दोनों है। जैन पारिभाषिक कोश में द्रव्यलेश्या भौतिक है, जबकि भाव लेश्या अभौतिक है।

लेश्या चेतना की रंगीन भावधारा है। जब तक वह रंग में परिवर्तित नहीं होती है तब तक भावों के साथ संलग्न है, तब तक उसे 'भावलेश्या' कहा जाता है। जब रंगों के रूप में रूपांतरित हो जाती है, तब 'द्रव्यलेश्या' है। यह आभामंडल के रूप में पहचानी जाती है। चेतना तो सदैव अखंड ही है, किंतु जब वह अलग—अलग स्तरों पर संलग्न होती है, तब उसके भेद—प्रभेद हो जाते हैं।

चेतना के तीन स्तर

जब चेतना स्थूल शरीर के साथ संयुक्त होती है, तब उसे 'चित्त' कहा गया है। चेतना तेजस शरीर के साथ संयुक्त होकर लेश्या कहलाती है। उदय और क्षयोपशम से चेतना कर्मशरीर के साथ जुड़ती है, तब वह अध्यवसाय कहलाती है। अध्यवसाय अशुभ कर्म के उदय से अशुभ होते हैं, क्षयोपशम से शुभ होते हैं। शुभ एवं अशुभ अध्यवसाय से भाव शुभ—अशुभ होते हैं। भाव जब रंगीन बनते हैं, तब लेश्या कहलाती है। रंगीन भावधारा (आभामंडल) को 'लेश्या' कहा गया है।

लेश्यातंत्र

स्थूल शरीर व कार्मण शरीर के मध्य विद्युतीय स्वरूप, आवेश, आवेग, आदतें, पूर्वजन्म के संस्कार रूप क्रिया—कलाप व आदतों का अंतर द्वंद्वात्मक पक्ष है। लेश्या के दो रूप हैं—एक है भावलेश्या, जो चेतना से संबंधित है; दूसरी है द्रव्यलेश्या, जो पुद्गलों से संबंधित है।

आभामंडल

भावों के अनुरूप निकलनेवाली ऊर्जा—तरंग, जो विभिन्न रंगों के रूप में प्रकट होती हैं, उन रंगों की विशेष कैमरों द्वारा वीडियोग्राफी की जाती है। क्रिलियन फोटोग्राफी से दृश्य बन जाता है। रंग—परिवर्तन से भावों के परिवर्तनानुसार भा—मंडल, मस्तिष्क का प्रभामंडल। महापुरुषों के मस्तक के पीछे प्रकाश—पुंज जैसा दिखाया जाता है। शुभ भावों से निकलनेवाली रश्मियाँ—तेजस, पद्म और शुक्ल लेश्या कहलाती हैं। अशुभ भावों से निकलनेवाली रश्मियाँ मलिन होती हैं, जो कापोत, नील और कृष्ण कहलाती हैं।

तेजस, पद्म और शुक्ल की श्रेष्ठता यह है कि इनके रंग चमकीले होते हैं। व्यक्ति संयमी, आध्यात्मिक परिपक्वता, पूर्ण शांत, विशुद्ध उच्चारणवाले, ज्ञानी, ध्यानी और वीतराग स्थितिवाले होते हैं।

पद्म लेश्या—पीत वर्ण, संयमोन्मुखी, प्रशांत मन, माया, लोभवाला होता है।

तेजस लेश्या—रक्त वर्ण, विनम्र, अचपल, जितेंद्रिय, संतुलित, चिंतनशील।

कापोत लेश्या—कबूतर के रंगवाली, वाणी में कठोरता, व्यंग्य, आचरणहीनता, दोष को छिपाना, विपरीत चिंतनवाला होता है।

नील लेश्या—भद्दा, नीला रंग, ईर्ष्यालु, मायावी, निर्लज्ज, द्वेषी, आसक्त, यश—लोलुप होता है।

कृष्ण लेश्या—भद्दा, काला रंग, प्रमादी, क्रोधी, कषायी, असंयमी, क्षुद्र, क्रूर, हिंसक प्रकृतिवाला होता है।

लेश्याध्यान की उपयोगिता

यह तो स्पष्ट जाना गया कि पुद्गलों एवं बाह्य वातावरण का प्रभाव लेश्या एवं भावों पर होता है, चाहे भाव अच्छे—बुरे कैसे ही क्यों न हों, अच्छे भावों के लिए अच्छा वातावरण देना होगा। बुरे भाव तो बुरे वातावरण से स्वत: प्रकट होने लगते हैं। अध्यवसाय अंतरंग को प्रभावित करनेवाली स्थिति है, जिससे कर्मों का आवरण व निरावरण होता है, जिसे 'बंध' और 'क्षयोपशम' कहा गया है। लेश्या के स्वरूप का अवधारण करते समय यह स्पष्ट जान लेना चाहिए कि अशुभ वातावरण एवं अशुभ रंग अशुभ लेश्या को प्रोत्साहित करते हैं। शुभ वातावरण एवं शुभ रंग शुभ लेश्या में सहयोगी बनते हैं। यदि साधक को ध्यान करते समय चमकीले रंग, शांत और अनुकूल वातावरण दिया जाए तो सहज रूप से व्यक्ति शुभ लेश्या में उतर सकता है और गहन ध्यान में प्रवेश पा सकता है। मक्खी, मच्छर, सीलन और अशांत वातावरण व्यक्ति को ध्यान में प्रवेश नहीं पाने देते हैं।

संकल्प की दृढ़ता

बाह्य वातावरण के साथ व्यक्ति का संकल्प दृढ़ हो, ध्यान की स्थिति को प्राप्त करने की ललक हो। जिसकी संकल्प—शक्ति सुदृढ़ होती है, वह शीघ्र ध्यान में प्रवेश पा सकता है। इसके साथ भोजन का प्रभाव हमारी वृत्तियों और विचारों पर पड़ता है। आहार विवेक से, हलका, सात्त्विक और स्वस्थ भोजन ध्यान में सहयोगी बनता है।

प्रेक्षाध्यान की पूर्व तैयारी भी आवश्यक है। उसके लिए सुखासन, जिसमें आराम से शरीर को स्थिर रखा जा सके तथा कायोत्सर्ग—शरीर की स्थिरता और शिथिलता, सभी ध्यानों के लिए आवश्यक है। यदि प्रेक्षा—अनुप्रेक्षा से

चित्त को वर्तमान में राग—द्वेष के बिना रखा जा सके, प्रतिक्रिया—विहीन स्थिति का निर्माण किया जा सके तो प्रेक्षाध्यान सहज हो जाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विज्ञान ने यंत्रों का विकास किया है, जिससे ध्यान के समय परिवर्तन होने की स्थितियों का अवलोकन किया जा सकता है। साथ ही ध्यान के समय भीतर से निकलनेवाली रश्मियों की आवृत्तियों, तरंगदैर्घ्य की जानकारी मिल जाती है।

त्रिपार्श्व से सूर्य की श्वेत किरणों का विभाजन

त्रिपार्श्व से सूर्य की श्वेत किरणों का सात रंगों में विभाजन हो जाता है। दृश्य रंगों की उच्च आवृत्ति 7,600 एवं न्यून आवृत्ति 4,000 होती है।

लेश्या—प्रभाव

प्राण ऊर्जा की तरंगों से एवं रंगों की तरंगों से स्वभाव, आदतों में कुछ परिवर्तन घटित होता है। आभामंडल से निकलनेवाली रश्मियाँ एवं शरीर ऊर्जा से निर्मित तरंग शरीर के निकटस्थ ऊर्जा रश्मि, शरीर की स्थिति का वर्णन करती हैं। उससे स्वल्प सी दूर, लगभग 2 इंच मन:स्थिति को व्यक्त कर रही है। उससे आगे भावधारा को अभिव्यक्ति दे रही है। ये आभा रश्मियाँ हैं। आभामंडल का अवलोकन करते समय इस तथ्य का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि जो तरंगें निकल रही हैं, वे भाव, मन और शरीर की स्थिति का वर्णन कर रही हैं।

आभामंडल को समझते समय इस सच्चाई पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। भाव—शुद्धि से मन की शुद्धि स्वत: हो जाती है। भाव और मन निर्मल हुए कि शरीर में उत्पन्न रोग की रश्मियों में परिवर्तन घटित होने लगता है।

लेश्याध्यान का सिद्धांत

प्रेक्षाध्यान की अपूर्व संपदा लेश्याध्यान है। लेश्याध्यान के प्रयोग अपने आप में विलक्षण हैं। रंग का ध्यान केवल रंग को देखना ही नहीं है। रंग की अलग पहचान और उनकी अलग—अलग विशेषताएँ हैं, जिसकी सूचना 'नमस्कार महामंत्र' रचना में उपलब्ध है। शशि सम धवला अरहंता—शशि के समान अर्हत् हैं। श्वेत रंग श्वेत रंग ही नहीं, अपितु श्वेत रंग की अवधारणा से अरहंतता का ऐश्वर्य प्रकट होता है।

'भगवती सूत्र' में एक जगह भगवान् गौतम के प्रश्न के उत्तर में बता रहे हैं, जब कोई 'पुस्तक' शब्द का उच्चारण करता है, उस क्षण उस व्यक्ति का ज्ञान पुस्तक में रूपांतरित हो जाता है। वह व्यक्ति नहीं रहा, उस क्षण वह पुस्तक बन गया। उस क्षण उसकी ज्ञान चेतना पुस्तक में तदाकार हो गई। यह सच्चाई है कि व्यक्ति ज्ञान चेतना के अलावा है भी क्या? केवल सभी आत्माएँ ज्ञानमयी हैं। आत्मा क्या है? उसमें चेतना है। चेतना की पहचान ज्ञान से है। ज्ञान ही जड़ से चेतना को अलग करता है।

जड़ और चेतना की शक्ति में कोई अंतर नहीं है। यदि कैवल्य ज्ञान को निकाल दिया जाए तो जड़ सारे कार्य कर सकता है, जो चेतन करता है। अस्तित्व है, गति है, क्रिया है, प्रतिक्षण परिवर्तन है। जड़ का भी आभामंडल होता है। उससे भी आभा रश्मियाँ निकलती हैं। ज्ञान ही चेतना की विलक्षणता है। जब ज्ञान चेतना 'णमो अरहंताणं' कहती है, वह अर्हत् बन जाती है, उस क्षण पवित्र भावों में बदल जाती है। वर्तमान में राग—द्वेष के बिना तटस्थ वीतराग

भावों में अवस्थित हो जाने से वीतराग स्थिति एक क्षण के लिए बनने से अनंत—अनंत कर्म वर्गणाएँ क्षीण हो जाती हैं।

श्वेत रंग का ध्यान केवल श्वेत रंग ही नहीं है, अपितु वीतराग कल्प की अवधारणा से अर्हत् स्वरूप प्रकट होता है, भले वह एक क्षण ही क्यों न हो। एक क्षण ही अंततः वीतरागता का प्रकटीकरण है। इसी तरह अरुण रंग दर्शन केंद्र पर 'णमो सिद्धाणं', शुद्ध चेतना प्रकट होती है, तब ध्यानी सिद्ध स्थिति में व्यक्त होता है। इसी तरह 'णमो आयरियाणं' पीला रंग आचार्य की अभिव्यक्ति दिलाता है। 'णमो उवज्झयाणं'—उपाध्याय की ज्ञान चेतना का प्रकटीकरण है, जो हरे रंग से अभिव्यक्त होता है। 'णमो लोए सव्व साहूणं'—गहरा नीला रंग समता का, साधना का रंग है। साधुता की भावना से व्यक्ति समता के साथ साधुता में प्रवेश कर जाता है। ये पाँचों रंग पाँच भावों की अभिव्यक्ति देते हैं। लेश्याध्यान केवल रंग का ही ध्यान नहीं है, अपितु चैतन्य केंद्रों में विशिष्ट उपस्थिति है। उनके जागरण से विशेष आनंद और अहोभाव उत्पन्न होता है। विशिष्ट ज्ञान या जाति स्मरण के ज्ञान की उत्पत्ति में शुभ अध्यवसाय, शुभ भाव और शुभ लेश्या की स्थिति आवश्यक है।

लेश्या की विशुद्धि से आत्मानुभूति

लेश्याध्यान से भावों का रूपांतरण होता है। उससे ध्यान की गहनता में प्रवेश पाते हैं। तीन प्रशस्त लेश्याओं के ध्यान से व्यक्ति की चेतना का ऊर्ध्वारोहण होता है। प्रशस्त रंगों की तन्मयता से विशिष्ट प्रकार के स्पंदन प्रकट होते हैं, जिनमें सुखद अनुभूति होती है। चेतना उनमें एकाग्र बन जाती है। एकाग्रता, सघनता से व्यक्ति का चित्त राग—द्वेष से मुक्त वर्तमान की अनुभूति में उतरता है। यह अनुभूति कुछ क्षण निरंतर बनी रहती है। व्यक्ति के अशुभ कर्म, भाव और लेश्या में परिवर्तन होने से व्यक्ति प्रशस्त लेश्याओं के स्पंदन में लीन हो जाता है। यह सुखद अनुभूति वर्णनातीत है।

लेश्याध्यान से कैसे होती है अंतरंग यात्रा?

लेश्याध्यान के लिए संकल्पबद्ध हो प्रयोग में उतरते हैं। सर्वप्रथम शरीर का शिथिलीकरण, स्थिर शरीर, हलकेपन का अनुभव होता है। चेतना के प्रति पूर्ण जागरूकता उत्पन्न होती है। दूसरे चरण में शरीर की स्थिर स्थिति में भीतर आनंद केंद्र की ओर सरकते जाएँगे, अर्थात् शरीर में फैली चेतना को भीतर आकर्षित करते हैं, तब सहज रूप से स्पंदन नाभि की ओर बढ़ते हैं। चेतना का मुख्य केंद्र नाभिक्रेंद्र है, क्योंकि गर्भ में हमारा संबंध नाभि से ही रहा है। यह तेजस केंद्र है, जहाँ अरुण रंग का ध्यान करते हैं। इसी तरह लेश्याध्यान में दर्शन केंद्र पर अरुण रंग का ध्यान करते हैं। अरुण रंग बाल सूर्य का रंग है। लाल रंग अग्नि का प्रतीक है। अग्नि ऊर्जा का प्रतीक है। ऊर्जा से तेजस्विता, सक्रियता, दीप्ति, प्रवृत्ति बढ़ती है। दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र) पिट्यूटरी ग्रंथि का स्थान है। यह 'मास्टर ग्लैंड' कहलाती है। दर्शन केंद्र ही 'तीसरा नेत्र' कहलाता है। यहाँ के स्पंदन अत्यधिक शक्तिशाली होते हैं, साथ ही अत्यंत सुखद होते हैं। नाभि एवं दर्शन केंद्र का कोई अंतर्संबंध होगा कि दोनों के स्थान पर अरुण रंग (बाल सूर्य) का ध्यान किया जाता है। अरुण रंग का ध्यान तेजस ऊर्जा को जाग्रत् करता है। तेजस ऊर्जा से संबंध बनते ही पूरा शरीर स्पंदित होने लगता है। तेजस लेश्या के जागने का स्थूल परिणाम यह आता है कि व्यक्ति जितेंद्रिय होने लगता है। इंद्रियाँ सहज अंतर्मुखी हो जाती हैं। इंद्रियाँ पदार्थ के सुख से विरत होने लगती हैं। पदार्थ के बिना स्पंदनों में सुख का आभास होने लगता है। तेजस लेश्या के स्पंदन विद्युत् तरंगमय होते हैं। शरीर प्रेक्षा के प्रयोग के समय सर्वांग शरीर प्रेक्षा में पूरे शरीर में विद्युत् तरंग के सुखद स्पंदनों का अनुभव होता है।

पद्म लेश्या से चित्त निर्मल होता है, शांति और आनंद की वृद्धि होती है। पीले रंग की क्षमता है—ज्ञान का विकास करना। पीला रंग मस्तिष्क को सक्रिय तथा नाड़ी संस्थान को प्राणवान् बनाता है। नाड़ी संस्थान के बिना प्राणवान् के ज्ञान और ध्यान दोनों ही दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रह सकते हैं। मस्तिष्क पर पीले रंग के ध्यान से ज्ञान—तंतु सक्रिय होते हैं तथा स्मरण—शक्ति बढ़ती है।

शुक्ल लेश्या का रंग पूर्णिमा के चंद्रमा की चाँदनी जैसा श्वेत होता है। श्वेत रंग पवित्रता, शुद्धता, निर्वाण का द्योतक है। श्वेत रंग में सभी रंग निकल जाते हैं। शुक्ल लेश्या की अपनी विशिष्ट शक्ति होती है। शुक्ल ध्यानी ध्यान की विशिष्टता से अनंत—अनंत कर्म वर्गणाओं का विलय कर लेता है। शुक्ल ध्यानी स्वयं शांत, वीतरागता के तुल्य, हर परिस्थिति में शांत रहता है। शुक्ल ध्यान से चेतना पूरी तरह जाग्रत् हो जाती है, विवेक प्रबुद्ध हो जाता है, वह बुरे और अच्छे में भेद कर सकता है। जो त्याज्य है, उसका परित्याग करता है; जो स्वीकार्य है, उसे स्वीकार करता है।

सारांश में, यही कहा जा सकता है कि लेश्याध्यान से व्यक्ति के भावों का परिष्कार या रूपांतरण संभव है। यह भी आभामंडल के विकास में सहायक बन सकता है।

❑

अध्याय— 14

लेश्याध्यान के प्रयोग

- आभामंडल की परतें
- मनुष्य के आभामंडल का तरीका।

लेश्याध्यान के प्रयोग

लेश्याध्यान के प्रयोग रंगों के साथ चैतन्य केंद्रों पर होते हैं। आनंद केंद्र (सीने के मध्य) पर हरे रंग का ध्यान किया जाता है। हरे रंग की कल्पना या अवधारणा के द्वारा यह भावना की जाती है कि चारों ओर हरे रंग के परमाणु फैले हुए हैं। श्वास लेते समय हरे रंग के परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। आनंद केंद्र पर हरे रंग के परमाणु चमक रहे हैं। पन्ने की भाँति चमकता हुआ हरा रंग! अनुभव करें कि हरी दूब जैसा हरा रंग। हरे रंग के ध्यान से भावधारा निर्मल होती है। अनुभव करें कि भावधारा निर्मल हो रही है। प्रत्येक श्वास के साथ चमकता हुआ हरा रंग अनुभव करें।

इसी तरह विशुद्धि केंद्र पर नीले रंग का ध्यान करें। मयूर की गरदन की भाँति चमकता हुआ नीला रंग, आकाश जैसा नीला रंग। नीले रंग के परमाणु हवा में तैर रहे हैं। श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर जा रहे हैं। विशुद्धि केंद्र पर नीले रंग के परमाणु चमक रहे हैं। श्वास छोड़ते हैं, तब चारों ओर नीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं। विशुद्धि केंद्र पर नीला रंग चमक रहा है। नीले रंग के ध्यान से वासनाएँ अनुशासित हो रही हैं, निर्मलता बढ़ रही है। विशुद्धि केंद्र पर ध्यान करने से भूख व प्यास का शमन हो जाता है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण केंद्र है—दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र)। दर्शन केंद्र पर अरुण रंग का ध्यान करें। प्रात:काल उगते हुए सूर्य के अरुण रंग की धारणा करें। बाल—सूर्य का अरुण प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। श्वास लेते हैं, तब अरुण रंग श्वास के साथ भीतर जा रहा है। दर्शन केंद्र पर अरुण रंग चमक रहा है। प्रश्वास छोड़ते हैं, तब अरुण रंग चारों ओर फैल रहा है। अंतर्दृष्टि जाग्रत् हो रही है, अतींद्रिय क्षमता का विकास हो रहा है।

ज्ञान—केंद्र (मस्तक) पर पीले रंग का ध्यान करें। कल्पना करें कि चारों ओर सूरजमुखी के फूल के बगीचे हैं। सूरजमुखी के फूलों के रंग के समान चारों ओर पीले रंग के परमाणु फैल रहे हैं। श्वास लेते हैं, तब पीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। ज्ञान—केंद्र पर पीले रंग के परमाणु चमक रहे हैं। ज्ञान—तंतु सक्रिय हो रहे हैं, स्मरण—शक्ति विकसित हो रही है।

अब चित्त को ज्योति—केंद्र (ललाट के मध्य भाग) पर श्वेत ज्योति या पूर्णिमा के चाँद की धारणा करें। पूर्णिमा का चाँद ललाट के मध्य चमक रहा है। चारों ओर श्वेत प्रकाश के परमाणु फैल रहे हैं। श्वास लेते हैं, तब श्वेत परमाणु भीतर प्रवेश कर रहे हैं। ज्योति—केंद्र पर श्वेत रश्मियाँ चमक रही हैं। प्रश्वास छोड़ते हैं, तब चारों ओर श्वेत रश्मियाँ फैल रही हैं। भावधारा निर्मल हो रही है, क्रोध शांत हो रहा है।

लेश्याध्यान से चित्त निर्मल और विशुद्ध होता है। रंग केवल रंग ही नहीं, साथ में निर्मल भावधारा हैं। हमारे शरीर के अंग भी रंगीन हैं। शरीर में किसी रंग की कमी होती है, तब शरीर बीमार होने लगता है। लेश्याध्यान से उन रंगों की पूर्ति होने से व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। लेश्याध्यान केवल लेश्या ही नहीं, कर्म वर्गणाओं को वह क्षीण करती है, जिससे चित्त निर्मल होता है। हमारा शरीर पृथ्वी का एक खंड ही है। उस पर अन्य ग्रहों का प्रभाव पड़ता है।

लेश्याध्यान के रंगों से ग्रहों का प्रभाव भी रूपांतरित हो जाता है। लेश्याध्यान शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक समस्याओं का समाधानकारक है।

लेश्या और आभामंडल दो नहीं बल्कि एक ही है। जैन पारिभाषिक शब्द 'लेश्या' है और 'आभामंडल' हिंदी भाषा का शब्द है। आभामंडल को पहचानने के लिए कुछ विधियाँ दी गई हैं। इन विधियों को आजमाने के पश्चात् आप स्वयं अनुभव करेंगे कि अपनी भावधारा को निर्मल रखने से आभामंडल के रंग रूपांतरित होते हैं। किसी को कहने की आवश्यकता नहीं, आभामंडल को स्वयं देखकर आवेश और आवेग के समय किस तरह के रंग आते हैं और शांत अवस्था में कैसे रंग आते हैं, व्यक्ति स्वयं इस सच्चाई को समझकर अपने आचरण में परिवर्तन कर सकता है। जैन आगमों में यह स्पष्ट उल्लेखित है कि अंतिम समय में जैसी लेश्या होती है, भाव वैसे ही होते हैं। मनुष्य वैसी ही गति में उत्पन्न होता है। जनता में एक कथन प्रचलित है—'अंत मति सो गति', अंतिम क्षण में जो मति होती है, उसके अनुसार ही उसकी गति होती है। उस समय की मति, मानसिक स्थिति और भावधारा को समझने के लिए आभामंडल से सहयोग मिलता है।

आनेवाले युग में आभामंडल के ऐसे डॉक्टर मिलेंगे, जो छह महीने पहले ही शरीर पर कौन सा रोग उतरने वाला है, यह आभामंडल को देखकर बता देंगे। वे डॉक्टर आभामंडल को देखकर बता देंगे कि कौन सी बीमारी है। ध्यान और भावना के द्वारा वे अस्वस्थ आभामंडल को स्वस्थ बना देंगे। तब व्यक्ति स्वस्थ हो जाएगा। पारिवारिक डॉक्टर, जो साल भर का शुल्क लेता है, सभी स्वस्थ रहते हैं तो भी डॉक्टर के पास वह शुल्क सुरक्षित पहुँच जाता है। यदि कोई सदस्य बीमार हो जाए तो जितने दिन बीमार रहा, उसके उपचार में जो कुछ खर्च हुआ, उसे डॉक्टर को चुकाना होता है; क्योंकि छह महीने पूर्व बीमारी आभामंडल में उतर आती है। उसका दायित्व था कि वह उसे रोक देता। उसका प्रायश्चित्त उसे ही करना होता है। प्रायश्चित्त—स्वरूप जब तक बीमार ठीक नहीं हो जाए, चिकित्सक को चिकित्सा संबंधी खर्च एवं अन्य सुविधाएँ जुटाकर देनी पड़ती हैं।

आभामंडल को समझने और अपने अनुभव से विश्लेषण करने की कला को विकसित करना होता है। किसी चीज की प्रवीणता हासिल करने के लिए केवल पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता है, सैद्धांतिक ज्ञान के साथ—साथ व्यावहारिक एवं प्रायोगिक अभ्यास भी आवश्यक है। प्रयोगों से स्वयं की अंतर्दृष्टि को जगाना होता है। जब आप दर्शन केंद्र (आज्ञाचक्र) पर नियमित 30 मिनट ध्यान करेंगे तो आपके भीतर की चेतना से स्फूर्त दृष्टि सृष्टि की सच्चाई को उजागर करेगी।

आभामंडल की परतें

आभामंडल को समझने के लिए सबसे पहले स्थूल शरीर पर ध्यान केंद्रित करना होता है। पूरे शरीर पर चमड़ी है, चमड़ी पर बालों के साथ छिद्र हैं। उन छिद्रों से पसीना बाहर निकलता है। पसीने के साथ गंध, नमक एवं अन्य विजातीय तत्त्व बाहर आते हैं। अनिमेष प्रेक्षा, दर्पण प्रेक्षा, त्राटक आदि के अभ्यास के पश्चात् अपनी चमड़ी या हाथ को सफेद कागज अथवा सफेद दीवार पर स्थिरता से टिका दें। अल्प समय तक बिना आँखों को टिमटिमाए केवल देखते जाएँ। सबसे पहले हाथ पर हलके भूरे रंग की एक परत आएगी, उसके साथ सफेद रंग की परत दिखाई देगी। स्थिरता से देखते जाने से दृष्टि में अगले रंग उभर आते हैं। जहाँ कुछ नहीं दिखाई देता था, वहाँ भी हलके, किंतु बादलों के सदृश रंग दिखाई देने लगते हैं। इस अभ्यास को बढ़ाने से व्यक्ति के चारों ओर शरीर पर हलके—हलके बिंदु उभरते हुए दिखाई देते हैं। फिर सघन होते ही रंग स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं।

मनुष्य के आभामंडल को देखने का तरीका

सफेद दीवार के पास किसी व्यक्ति को दीवार की तरफ मुँह करके खड़ा करें। दीवार से व्यक्ति एक फीट दूर रहे, बिलकुल सटे नहीं। उस व्यक्ति के मस्तक पर एकाग्र होकर दृष्टिपात करें। पहले धुँधली सी छाया नजर आएगी, फिर उसके परिपार्श्व में 3 और 5 इंच की दूरी पर रंग दिखाई देने लगेगा। स्पष्टता के लिए अभ्यास की परिपक्वता आवश्यक है। आत्मविश्वास के साथ अभ्यास को बढ़ाते जाएँ। इस अभ्यास से आभामंडल की छाया दिखाई देने लग सकती है। आँखों की दृष्टि स्थिर होते ही बिना किसी सहारे के स्वत: आभामंडल के रंग दिखाई देने लग सकते हैं। पुन:—पुन: अभ्यास ही व्यक्ति को सफलता के द्वार पर पहुँचाता है।

❑

अध्याय— 15

जन्म और मृत्यु के मध्य है जीवन

- जीवन का प्रथम पड़ाव है जन्म और जीवन का अंतिम पड़ाव है मृत्यु।
- चेतना जागरूक बनकर अपने स्वरूप में अवस्थित रहने का प्रयास करती है।
- भाव एवं क्रिया—प्रतिक्रिया से संस्कारों का निर्माण होता है।
- तुम अतीत में भी थे, वर्तमान में भी हो और भविष्य में भी रहोगे।
- प्रयोग करें और अनुभव करें। सौ तर्कों की अपेक्षा एक अनुभव अधिक शक्तिशाली है।

जन्म और मृत्यु के मध्य है जीवन

जन्म जीवन का प्रथम पड़ाव है और मृत्यु जीवन का अंतिम पड़ाव। जन्म, जीवन और मृत्यु को अलग नहीं किया जा सकता है। जन्म से जीवन शुरू होता है तो उसी क्षण मृत्यु भी घटित होने लगती है। मृत्यु, जन्म और जीवन में भिन्नता नहीं है। कालखंड को भले ही हम अतीत, वर्तमान और भविष्य में विभाजित करते हैं, किंतु भविष्य वर्तमान में उतरकर अतीत बनता है। जिसे पूर्व कहते हैं, वही दिशा आगे बढ़ने पर पश्चिम बन जाती है। पूर्व—पश्चिम को दो हिस्सों में भले बाँट लो, लेकिन पूर्व—पश्चिम हमारी दृष्टि और धारणा से निष्पन्न होती हैं। जन्म और मृत्यु भी हमारी धारणा से निष्पन्न होते हैं। चेतना का न जन्म है और न मृत्यु। वह अजर—अमर व अविनाशी है। जन्म और मृत्यु के प्रवाह का अंत निर्वाण है। निर्वाण की यात्रा—प्रवाह के दो छोर हैं—जन्म एवं मृत्यु और फिर अपने स्वरूप में अवस्थित होना। निर्वाण, जहाँ चेतना सदा—सदा के लिए अपने स्वरूप में स्थिर हो जाती है, फिर न जन्म है और न ही मृत्यु और न जीवन का प्रवाह।

कर्म का सतत प्रवाह

शरीर के साथ चेतना का प्रवाह चलता है। जन्म, जीवन और मृत्यु, उसका कारण है कर्म का सतत प्रवाह। चेतना और कर्म दोनों का जीवन पर साम्राज्य है। कभी कर्म में बदलाव होता है तो चेतना आवृत्त हो जाती है, तब वह मूर्च्छा में आ जाती है। जब चेतना कुछ निरावरण होती है, तब कर्म का प्रभाव कम हो जाता है। तब चेतना जागरूक बनकर अपने स्वरूप में अवस्थित रहने का प्रयास करती है। चेतना जब कर्म के प्रभाव में होती है, तब मूर्च्छा का प्रभाव होता है। जब कर्म का प्रभाव कम होता है, तब वह अपने स्वरूप में आने का प्रयास करती है।

कर्म की क्रिया ही प्रतिक्रिया

चेतना जब कोई कर्म या प्रवृत्ति करती है, तब उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होती है। प्रत्येक प्रतिक्रिया से अर्जित कर्म संस्कार बन जाते हैं। कर्म व संस्कार जब प्रकट होते हैं, तब वे एक प्रकार के भाव का निर्माण करते हैं। भाव से मन, वचन और काया की प्रवृत्ति होती है। प्रवृत्ति से पुन: प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रिया एक नए संस्कार या भाव कर्म का निर्माण करती है। भाव एवं क्रिया—प्रतिक्रिया से संस्कारों का निर्माण होता है। यदि उस समय भाव तटस्थ या सम होता है तो संस्कार विलीन, निर्जरित हो जाते हैं।

अचेतन, चेतन की निरंतरता

यह जगत् द्वंद्वात्मक है। पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई देता है। पदार्थ हमारे चारों ओर है। वह निर्जीव है। उसमें जीव नहीं है। पहले जीव था, ऐसा इस 'निर्जीव' शब्द से ही अभिव्यक्त हो रहा है। प्रतिपक्ष के बिना पक्ष का अस्तित्व टिक नहीं सकता; इसलिए इस जगत् में प्रकाश है तो अँधेरा भी है, रात है तो दिन भी है, दु:ख है तो सुख भी है। ऐसे ही निर्जीव है तो जीव भी है।

चेतन और अचेतन की निरंतरता है। यह सर्वथा नष्ट नहीं हो सकता और नया भी पैदा नहीं हो सकता। विज्ञान भी इस सच्चाई को इस रूप में अभिव्यक्ति देता है कि इस जगत् में जितने पदार्थ/परमाणु हैं, एक भी नष्ट नहीं होता और न ही पैदा होता है। परिणमन का क्रम निरंतर चलता रहता है। इसका प्रारंभ कब और कैसे हुआ, उसे कहा नहीं जा सकता। यह अनादिकालीन प्रक्रिया है। हर पदार्थ में परिणमन अनादिकालीन है। जैसे स्वर्ण की चेन में सोना है। सोने को गलाकर अँगूठियाँ बनाई गईं। चेन में भी सोना था, अँगूठियों में भी सोना है; केवल उसे रूपांतरित किया जाता है। दूध में दही का जामन देकर जमाने पर दूध दही में रूपांतरित हो जाता है। दूध भी पदार्थ था और दही भी पदार्थ है। दूध का दही में बदलना परिणमन है; किंतु वह सर्वथा नष्ट नहीं होता, बल्कि रूपांतरित हो जाता है।

चेतना निकलने से स्थूल शरीर की मृत्यु

चेतना ने जब गर्भ में शरीर के साथ संयोग किया, उससे कर्मानुसार शरीर का निर्माण हुआ। सावधिक गर्भ में रहकर नौ माह बाद जन्म को धारण किया। यह शरीर के साथ चेतना का उद्भव है। किंतु मृत्यु के साथ चेतना का अंत नहीं होता। स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर चेतना नष्ट नहीं होती। मृत्यु के समय चेतना अपने निर्धारित स्थान पर गमन कर जाती है। मृत्यु के समय चेतना अपने अर्जित कर्मों के अनुसार प्रस्थान कर तत्क्षण अपने निर्धारित स्थान पर पहुँच जाती है।

भारतीय दर्शन में आत्मा की अमरता की स्वीकृति है। इसलिए उसे मृत्यु के पश्चात् निश्चित स्थान पर उत्पन्न होना होता है। कुछ हिंदू परंपरावादी ऐसा भी मानते हैं कि जब चेतना को उचित कर्मानुसार गर्भ नहीं मिल पाता है, तब वह कुछ समय तक सूक्ष्म शरीर में ही भटकती रहती है। कर्मानुसार गर्भ मिलने पर वह उत्पन्न हो जाती है। पुराणों में अनगिनत घटनाएँ अंकित हैं। सामान्यजन में भी ऐसा विश्वास प्रचलित है। जीवात्मा मृत्यु के उपरांत पुनर्जन्म को धारण करता है। शुभ कर्म करनेवाला श्रेष्ठ गति को धारण करता है और क्रूर कर्म करनेवाला अधोगति को धारण करता है।

जैन धर्म पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। जैन आगमों में पुनर्जन्म की अनगिनत घटनाएँ अंकित हैं। जाति स्मृति का प्रयोग इस सच्चाई का प्रकटीकरण है कि तुम अतीत में भी थे, वर्तमान में भी हो और भविष्य में भी रहोगे। बौद्ध धर्म यद्यपि क्षणिकवाद का प्रतिपादक है, किंतु बुद्ध स्वयं अपनी जातक कथाओं में यह अभिव्यक्ति देते हैं कि मैंने अपने पूर्वजन्म के परिणामों को भोगा है। पूर्व जीवन के लक्षणों के आधार पर लामाओं को खोजा जाता है, ऐसा उनके साहित्य में विस्तार से वर्णित है।

कुछ धर्म ऐसे हैं, जो पुनर्जन्म और पूर्वजन्म में विश्वास नहीं करते हैं। उनमें मुख्य रूप से इसलाम और ईसाई हैं। किंतु प्रकारांतर से वे स्वीकार भी करते हैं।

प्रख्यात विद्वान् प्रो. मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'सिक्स सिस्टम्स ऑफ इंडियन फिलॉसोफी' में बताया है कि प्लेटो, पाइथागोरस आदि के दार्शनिक ग्रंथों में भी पुनर्जन्म की मान्यता को प्रकारांतर से स्वीकार किया गया है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् एरीगन ने स्पष्ट लिखा है कि बार—बार जन्म लेने से फरिश्ते मनुष्य बन सकते हैं। ईसाई

धर्म के विद्वान् प्रो. जोजेफ ने अपनी पुस्तक में उन यहूदी सेनापतियों का जिक्र किया है, जो अपने सैनिकों को युद्ध में मरने के बाद पुन: पृथ्वी पर जन्म लेने का आश्वासन देते थे।

अच्छी आत्माएँ अच्छे व बुरी आत्माएँ बुरे शरीर में जन्म लेती हैं। जो आत्महत्याएँ करते हैं, उन्हें अँधेरे पाताल में भेज दिया जाता है। उसे 'हेडेस' कहा जाता है। जोजेफ का कथन 'ईशोपनिषद्' की आख्यायिका से अक्षरश: मिलता है, जिसमें कहा गया है— 'अन्धं तम: प्रविशन्ति, ये के आत्महता: जना:।'

यहूदी धर्म में पुनर्जन्म को 'गिलगूलिए' कहा जाता है। उनके धर्मग्रंथ 'जुहर' में इस मान्यता को स्वीकार किया गया है कि सब रूहों को बार—बार जन्म लेना पड़ता है। ग्लास्टिक धर्म/संप्रदाय के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि मरणोपरांत जीवन रहता है। पाँचवीं शताब्दी के मनीशियन संप्रदाय के लोग पुनर्जन्म को मानते थे।

'डिक्लाइन ऐंड फॉल ऑफ द रोमन एंपायर' के इतिहासकार गिबन ने लिखा है कि ईसा के शिष्य पुनर्जन्म को मानते थे। 'विज्डम ऑफ सोलमन' ग्रंथ में महाप्रभु ईसा ने पुनर्जन्म का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपने शिष्यों को कहा है कि पिछले जन्म का एलिन ही अब जॉन द वेविस्ट के रूप में जनमा है। बाइबिल चैप्टर—3, पैरा 3—7 में ईसा कहते हैं कि मेरे इस कथन पर आश्चर्य मत करो। तुम्हें निश्चित रूप से पुनर्जन्म लेना पड़ेगा। सेंट पॉल को ईसा की प्रतिमूर्ति माना जाता है। ईसाई धर्म के प्राचीन आचार्य कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार अगला जन्म धारण करना पड़ता है।

यूनानी दार्शनिक पाइथागोरस का अभिमत था कि मरणोपरांत आत्मा पुन: प्रकृति के किसी प्राणी में चली जाती है। यह निर्धारण कर्मफल के अनुसार होता है। प्लेटो ने यह स्वीकार किया कि जो आत्माएँ शुद्ध हो चुकी हैं, जिनका शरीर के प्रति तनिक भी मोह नहीं है, जो पूर्ण रूप से अनासक्त हैं, वे जन्म—मरण के चक्र से मुक्त हो जाती हैं। इसलाम के पवित्र धर्मग्रंथ 'कुरान शरीफ' में पुनर्जन्म के संबंध में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है। कुरान में कहा गया है —इनसान तुझे अपने रब की तरफ जाना है। वही तेरा अल्लाह है। तुझे मेहनत और तकलीफ उठाकर वहाँ तक पहुँचना है।

'कुरान' में कई आयतें हैं, जिनका गहराई से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि जन्म लेनेवाला मृत्यु को प्राप्त होता है। ठीक उसी तरह जैसे सृष्टि बनती है और विनष्ट होती है। 'हमने तुम्हें जमीन से पैदा किया है और पुन: उसी जमीन में भेज देंगे और फिर उसी में पैदा करेंगे, बार—बार आखिर तक।' एक दूसरी आयत में कहा गया है, 'तुम अपने से कैसे इनकार कर सकते हो? जब तुम मर चुके थे, उसने तुम्हें पुन: जीवित किया है। वह तुम्हें फिर मारेगा और फिर जिलाएगा। यहाँ तक कि आखिरकार तुम उनके पास फिर लौट आओगे।'

इस तरह कितनी ही आयतें हैं, जो मृत्यु के पश्चात् जीवन की निरंतरता पर प्रकाश डालती हैं। प्रसिद्ध सूफी संत मौलाना रूम ने लिखा है—''मैं पेड़—पौधे, कीट—पतंगे, पशु—पक्षियों आदि योनियों में होकर मनुष्य वर्ग में प्रविष्ट हुआ हूँ और अब देव वर्ग में स्थान प्राप्त करने की तैयारी कर रहा हूँ।''

'दि इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इसलाम' में पुनर्जन्म पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। उनके अनुसार इसलाम के अनेक फिरके पुनर्जन्म को मानते हैं; विशेषत: शिया संप्रदाय।

'दि इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन्स ऐंड एथिक्स' में कहा गया है कि भारतीयों के अतिरिक्त ईरानियों, जरथ्रुस्टों, मिस्त्रवासियों, यहूदियों, यूनानियों, रोमन, कैथोलिक आदि सभी ने पुनर्जन्म को माना है।

सच्चाई को प्रयोग से प्राप्त करें

कोई पूर्वजन्म या पुनर्जन्म को माने या न माने, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मानने और न मानने से यथार्थ का

पता नहीं चलता है। ईश्वर को कोई माने या ना माने, तो भी संसार का सारा क्रम व्यवस्थित चलता रहता है। हमें जिस क्षण यह अनुभव हो जाएगा, उस क्षण जान जाएँगे। मानने और जानने में बड़ा अंतर है। जानना अपने ज्ञान का साक्षात्कार है और मानना अपनी बुद्धि का काम है। बुद्धि के साथ तर्क है, अनुमान है। तर्क से ईश्वर है, यह सिद्ध किया जा सकता है और ईश्वर नहीं है, यह भी सिद्ध किया जा सकता है। पूर्वजन्म को तर्क से सिद्ध नहीं कर सकते, अपितु प्रयोग के द्वारा जाना जा सकता है। प्रयोग करें और अनुभव करें! सौ तर्कों की अपेक्षा एक अनुभव अधिक शक्तिशाली है। कोई मजहब माने या न माने, इससे क्या आप गर्भ में आए, यह आपको पता नहीं? बड़े हुए, आपकी स्मृति में नहीं; लेकिन इससे आप इनकार नहीं कर सकते। आपने अपने दादाजी, परदादाजी को नहीं देखा, इसलिए वे नहीं थे, ऐसा नहीं हो सकता। आपके पिताजी ने देखा है। उस पल से कैसे इनकार कर सकते हैं?

सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि जीवन और मृत्यु अटल सत्य है। व्यक्ति इस सत्य को जानकर अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का साक्षात्कार कर सकता है। तर्कों की बजाय प्रयोग शक्तिशाली होता है।

❑

अध्याय—16

मन की एकाग्रता : सफलता का सूत्र

- ‘मननात् मन:’—अर्थात् ‘मनन करनेवाली शक्ति मन कहलाती है।’
- किसी विद्या या वस्तु के ज्ञान को इंद्रियों से ग्रहण कर उसका विश्लेषण ‘मन’ से किया जाता है।
- ‘जब हम किसी विषय पर चिंतन करते हैं, कल्पना करते हैं या स्मृति करते हैं तो मन पैदा हो जाता है, अन्यथा वह अ—मन की अवस्था में चला जाता है।’
- जैन दार्शनिकों ने मन की रचना में मनोवर्गणा के परमाणुओं को स्वीकार कियाहै।
- वर्तमान में मन से संबंधित समस्याएँ पूरे विश्व में अपनी जड़ें जमा रही हैं।

मन की एकाग्रता : सफलता का सूत्र

हम भले ही बाह्य इंद्रियों के माध्यम का उपयोग करते हैं, किंतु किसी विद्या या वस्तु को ग्रहण कर उसका विश्लेषण मन से ही किया जाता है। मन की शक्ति पर ही यह निर्भर है कि आप उसका विश्लेषण किस रूप में करते हैं! सर्वप्रथम तो मस्तिष्क की कार्यविधि को समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि वह किस तरह से मन का उपयोग विश्लेषण में करता है। अब सहज ही प्रश्न उठता है कि मन क्या है?

मोक्ष का कारक

भारतीय मनीषियों ने मन के स्वरूप की व्याख्या करते हुए बताया, ‘मननात् मन:’—अर्थात् ‘मनन करनेवाली शक्ति को मन कहा गया है।’ मन के बारे में यहाँ तक कहा गया कि मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। ‘मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धनमोक्षयो:’। सचमुच अगर सम्यक् रूप से देखा जाए तो मानव—मन अपने आप में एक विशिष्ट उपलब्धि ही है, जिसके द्‌वारा मानव चिंतन, मनन, कल्पना और स्मृति का उपयोग करता है और अपने कार्य को आगे बढ़ाता है।

मनीषियों की दृष्टि

मन को नियंत्रित करना और उसका सम्यक् नियोजन करना मनीषियों का विशिष्ट कार्य रहा है। मन को कैसे पहचानें, कैसे जानें कि यह मन है? इसके उत्तर में मनीषी गण कहते हैं, ‘‘जब हम किसी विषय पर चिंतन करते हैं, कल्पना करते हैं या स्मृति करते हैं तो मन पैदा हो जाता है, अन्यथा वह अ—मन की अवस्था में चला जाता है।’’ मन कोई इंद्रिय नहीं है। इंद्रियाँ चाहें या न चाहें, उनके माध्यम से बाहर से विषय प्रवेश करता ही रहता है। इंद्रियाँ न कामी हैं, न भोगी। वे द्‌वार हैं। बाहर से आनेवाले विषय को ग्रहण करनेवाली ‘माध्यम’, ‘डोर’ वे हैं। इसके अलावा उनकी कोई अहमियत नहीं है। अहमियत या निर्णय का भाव पैदा करनेवाला तो मन है, जिसे यदि रस आता है तो वह दोबारा माँग कर सकता है, अन्यथा इनकार भी कर देता है। भारतीय मनीषी मन को नियंत्रित करना और नियोजित करना जीवन की सार्थकता और सफलता का सूत्र मानते हैं।

मुक्त और स्वतंत्र

मन न तो शरीर की तरह दृष्टिगोचर होता है, न ही वह अपने अस्तित्व की कोई भौतिक प्रत्यक्षीकरण संबंधी अवधारणा ही गोचर होने देता है। इस चंचल व चपल, कभी दृश्य, कभी अदृश्य, कभी इंद्रियानुभूत, कभी इंद्रियातीत मन को पकड़ने, उसका व्यवस्थित और सम्यक् अध्ययन करने का काम योगियों, दार्शनिकों एवं शास्त्रकारों ने गहनता से किया। उस समय तक मनोविज्ञान का अध्ययन दर्शनशास्त्र के एक भाग के रूप में ही होता था। यह तो अब हुआ है कि मनोविज्ञान दर्शन से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से आगे बढ़ रहा है। इसके पीछे सदियों और सहस्राब्दियों की ऐतिहासिक प्रयत्नवत्ता और प्राणमय प्रयत्नों में आहूत उन हाथों की एक अमर श्रृंखला की गाथा है, जिन्होंने अलग—अलग देशों और भू—भागों में, अलग—अलग कालखंडों में प्रयास किए और आज मनोविज्ञान को एक ऐसे उत्कर्ष के दिनों में पहुँचा दिया, जहाँ वह एक सम्मानित, स्वतंत्र और आकर्षक विषय के रूप में विश्व में प्रतिष्ठित हो चुका है।

इतिहास के आईने में

इस प्रकार जो मन पकड़ में नहीं आता, उस मन को तथा उसके कार्यकलापों को मनोवैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक आधार दिया। व्यक्तिगत समस्याओं एवं सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में उन्होंने मन का विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि मनोविज्ञान मन के कार्यकलाप और व्यापार तक ही सीमित नहीं है। उसे शुद्ध वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठा दी जा सकती है। इस मनोविज्ञान की जड़ें इतिहास में हजारों साल गहरी हैं और ये ज्ञान के अनेक क्षेत्रों से संबंधित हैं।

भिन्न—भिन्न खोजों की निष्पत्तियाँ

ईसा से पूर्व छठी शताब्दी के दार्शनिकों के विचारों में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं की विवेचना मिलती है। पश्चिमी जगत् में 'डेमोक्रेट्स' (Democritus 460—370 B.C.) ने सर्वप्रथम विश्व का आणविक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार, द्रव्य और मानव की रचना छोटे गतिशील परमाणुओं से हुई है। मानव शरीर को यह परमाणु जीवन या आत्मा प्रदान करते हैं। आत्मा के निर्माण की बात यदि थोड़ी देर के लिए न भी की जाए और मन को ही लेकर आगे बढ़ा जाए तो जैन दार्शनिकों ने मन की रचना में मनोवर्गणा के परमाणुओं को स्वीकार किया है। मन:पर्यव ज्ञानी उन परमाणुओं का विश्लेषण कर उनके भावों को प्रकट कर सकता है। जैन आगमों का एक और उल्लेख जयाचार्य ने अपनी 'चौबीसी' की रचना में प्रस्तुत किया है। अनुत्तर विमान के देवता अपने शंका—समाधान के लिए कुछ प्रश्न मनोभाव से प्रस्तुत करते हैं, जिसका प्रत्युत्तर जिन—तीर्थंकर कैवल्य ज्ञानी मनोवर्गणा के पुद्गलों से प्रस्तुत करते हैं। वे अनुत्तर विमान के देवता समाहित हो जाते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य है कि मन ज्ञान का एक साधन है।

अगस्टाइन (St. Augustine's 354—430) का विचार है कि अंतर्दर्शन विधि द्वारा अधिक शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है, अपेक्षाकृत ज्ञानेंद्रिय प्रत्यक्षीकरण के। उसने यह भी विचार व्यक्त किया कि मन या आत्मा की मुख्य शक्ति इच्छा—शक्ति है, जो आदतों, क्रियाओं और विश्वास के कारण के रूप में उत्तरदायी है। अगस्टाइन और अरस्तू के विचार ही पंद्रहवीं शताब्दी तक प्रचलित रहे। एक्वीनास (St. Thomas Aquinas 1225—1274) ने अरस्तू के विचारों और साथ ही अगस्टाइन के विश्वास और इच्छा संबंधी संप्रत्ययों को स्वीकार किया है। उसने अरस्तू के आत्मा संबंधी विचारों में संशोधन भी किया है।

डेकार्ट्स का 'मनुष्य का द्वैतवाद का सिद्धांत' और मन—शरीर की परस्पर भिन्नता का प्रतिपादन

डेकार्ट्स (Descartes 1596—1650) ने एक्वीनास के विचारों का खंडन करते हुए मनुष्य के 'द्वैतवाद सिद्धांत' का प्रतिपादन किया। उसके अनुसार, मन और शरीर एक—दूसरे से भिन्न हैं; परंतु साथ—ही—साथ मन और शरीर में अंत:क्रिया भी होती है। उसने विश्वास व्यक्त किया है कि मन शरीर को प्रभावित करता है और शरीर मन को प्रभावित करता है।

जॉन लॉक : 'कोरा कागज था यह मन मेरा, लिख दिया नाम इस पर तेरा'

जॉन लॉक (John Locke, 1632—1704) ने आधारभूत पर्यावरण संबंधी दृष्टिकोण अपनाया। उसने यह विचार व्यक्त किया कि मन कोरे कागज की भाँति है, जिस पर ज्ञानेंद्रियों द्वारा ज्ञान प्रविष्ट होता है और जिस पर विचार संवेदी प्रभावों द्वारा अंकित होते हैं। कुछ अन्य ब्रिटिश दर्शनशास्त्रियों, जैसे—ह्यूम, हार्टले, मिल और बेन आदि ने भी लॉक के समान विचार व्यक्त किए हैं। इन सभी का यह विश्वास है कि साहचर्य के अरस्तू द्वारा प्रतिपादित नियम ज्ञान, विचार, प्रतिमान आदि के चयन, एकत्रीकरण और संरचना आदि में महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। बर्कले (Berkeley 1685—1753) का विचार है कि दूरी प्रत्यक्षीकरण में मस्तिष्क को रेटिना से विभिन्न आकारों की प्रोसेस सूचना की आवश्यकता होती है। उसने यह तर्क दिया है कि अंततोगत्वा वास्तविकता मन में स्थापित रहती है, वातावरण में उपस्थित पदार्थों में वास्तविकता स्थापित नहीं होती है।

फ्लोरेंस (Flourens, 1794—1867) का मस्तिष्क के भिन्न—भिन्न भागों का व्यवहार की भिन्नता से संबंध का अध्ययन

फ्लोरेंस ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह प्रदर्शित किया कि मस्तिष्क के भिन्न—भिन्न भाग व्यवहार के भिन्न—भिन्न प्रकार्यों से संबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए, उसने चिड़ियों के कॉर्टेक्स को निकालकर देखा कि चिड़ियाँ ऐच्छिक रूप से उड़ने में असमर्थ थीं।

ब्रोका, फ्रिट्स एवं हिटजिग, रेमंड, हैल्महोज, सेक्नॉव और केलर के प्रयोग, निष्पत्तियाँ व परिभाषाएँ

ब्रोका (P. Broca, 1824—1880) ने अपने अध्ययनों के आधार पर मस्तिष्क में स्पीच एरिया की खोज की। एक अन्य प्रयोग में फ्रिट्स और हिटजिग (Fritsch and Hitzig, 1870) ने मस्तिष्क से उस क्षेत्र की खोज की, जो प्राणी के गत्यात्मक प्रकार्यों का नियंत्रण करता है। रेमंड (Du Bois Raymond, 1849) ने अपने प्रयोग के आधार पर यह प्रदर्शित किया कि स्नायविक क्रिया को मापा जा सकता है और यह बताया कि स्नायविक क्रिया में विद्युतीय आवेग होता है।

हैल्महोज (Helmholtz, 1850) ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह प्रदर्शित किया कि प्रत्येक स्नायविक प्रवाह के लिए एक विशिष्ट समय की आवश्यकता होती है। सेकनॉव (Sechenov, 1863) ने अपने प्रयोगों के आधार पर स्थिर किया कि कुछ पशु उद्देश्यपूर्ण क्रियाएँ केवल स्पाइनल कॉर्ड द्वारा संचालित सहज क्रियाओं के

आधार पर करते हैं। पशुओं की इन उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं के लिए मस्तिष्क के क्रियाशील होने की आवश्यकता नहीं होती है।

केलर (F.S.Keller, 1937) ने मनोविज्ञान की परिभाषा करते हुए कहा है कि मनोविज्ञान दैहिक विज्ञान और दर्शनशास्त्र का संगठन है। केलर ने अपनी पुस्तक में आगे लिखा है कि दैहिक शास्त्र के सामान्य मनोविज्ञान को केवल दैहिक शास्त्र से संबंधित आँकड़े ही प्राप्त नहीं हुए हैं, बल्कि इस विज्ञान से सामान्य मनोविज्ञान को विज्ञान की ओर अग्रसर होने में साधन के साथ ही दिशा भी प्राप्त हुई है।

वुंट, बिने व साइमन एवं पेवलॉव के भगीरथ प्रयास और साहसिक् उद्यम

वुंट (Wilhelm Wundt, 1832—1920) ने सन् 1879 में विश्व की प्रथम मनोविज्ञान की प्रयोगशाला की स्थापना की। उनकी यह प्रयोगशाला जर्मनी के लिपजिग विश्वविद्यालय में स्थापित हुई। उसने संवेदना के तीन तत्त्वों—तीव्रता, अवधि और स्थानीयकरण का अध्ययन किया। उसने अन्य विधियों की अपेक्षा अंतर्दर्शन विधि का प्रयोग अधिक किया। विश्व के सभी देशों के विद्यार्थी वुंट की प्रयोगशाला में आए और उन्होंने दृष्टि प्रत्यक्षीकरण, श्रवण, स्पर्श, स्वाद, प्रतिक्रिया काल, शब्द साहचर्य आदि से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया।

फ्रांस के बिने और साइमन (Binet and Simon, 1905) ने एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया, जिसका समय—समय पर संशोधन ही नहीं हुआ, बल्कि अनेक भाषाओं के अनुसार अनुकूलन भी किया गया। इस परीक्षण का परिवर्तित और संशोधित रूप आज भी प्रचलित है।

रूस में पेवलॉव (Pavlov, 1849—1936) ने सेक्नॉव के 'रिफ्लेक्सोलॉजी' से संबंधित कार्यों को आगे बढ़ाया। 'कंडीशंड रिफ्लेक्स' पर उसका कार्य अधिक प्रसिद्ध है। उसे 'कंडीशंड रिफ्लेक्स' से संबंधित अध्ययनों के लिए 'नोबेल पुरस्कार' भी मिला।

भारत में मनोविज्ञान

दर्शनशास्त्र के एक अंग के रूप में मनोविज्ञान का अध्ययन भारतवर्ष में प्रारंभ से ही किया जाता था। विश्वविद्यालय इसे दर्शनशास्त्र के पाठ्यक्रम के अंग के रूप में स्वीकार करते थे।

भारत में सर्वप्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना कलकत्ता विश्वविद्यालय में सन् 1916 में डॉ. एन.एन. सेनगुप्ता ने की। वर्तमान में लगभग 49 विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान की शिक्षा स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर दी जा रही है। सन् 1925 में 'इंडियन साइंस कांग्रेस' ने इस विषय को अपने वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित किया। तब से आज तक देश के मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कार्य करते और 'इंडियन साइंस कांग्रेस' में उनपर चर्चा करते चले आ रहे हैं।

भारत में मनोविज्ञान का विकास सन् 1925 से तीव्र गति से हुआ। मैसूर विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना सन् 1924 में प्रो. स्पीयरमैन के शिष्य डॉ. एम.वी. गोपालस्वामी द्वारा की गई। सन् 1926 में 'इंडियन जरनल ऑफ साइकोलॉजी' की स्थापना हुई। 1942 ई. में 'जरनल ऑफ एजुकेशन ऐंड साइकोलॉजी' की स्थापना हुई।

नया युग, नई संकल्पना

दर्शनशास्त्रियों ने दर्शन को इंद्रिय, मन और अतींद्रिय क्षमताओं से विश्लेषित किया है; किंतु प्रयोगात्मक ढंग से जो

कार्य अपेक्षित है, वह नहीं किया गया है। एक ऐसा समय आ चुका है हमारे सामने, जब विज्ञान दर्शनशास्त्र के सत्यों की ओर गति करने लगा है। कारण स्पष्ट है कि अब अधिकांश लोगों को केवल श्रद्धा और विश्वास से प्रभावित नहीं किया जा सकता। युवा वर्ग विज्ञान की प्रामाणिकता स्वीकारते हैं, बहुत हुआ तो कुछ लोग दर्शन में विश्वास करते हैं।

आखिर क्या कारण हो सकता है कि इतना प्राचीन होते हुए भी धर्मशास्त्र आकर्षक नहीं है और विज्ञान इतना नया है, फिर भी वह सर्वाधिक आकर्षक है?

जिम्मेदारियों को समझें

धर्मशास्त्र का आधार जिन स्तंभों पर खड़ा है, उनमें से एक है आत्मा का अस्तित्व। अर्थात् शरीर के अलावा भी एक अस्तित्व है और उसका अनुभव हो, इसके लिए कोई भौतिक प्रमाण नहीं है। एक अन्य स्तंभ है कर्मवाद, कर्म और कर्मफल का सिद्धांत। इसके अलावा, इस कर्म के चक्र में आत्मा का संसार में बार—बार जन्म लेना यानी पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत।

हमें इन समस्याओं को वैज्ञानिक आधार और स्वरूप प्रदान करना होगा, क्योंकि वैज्ञानिक मनवाला वर्तमान का युवा वर्ग सिर्फ विज्ञानसम्मत सच्चाई को स्वीकार करता है। यही हमारी जिम्मेदारी है।

क्या पूर्वजन्म/पुनर्जन्म सत्य है?

यह एक प्रश्न है। ऐसा प्रश्न, जो यदि सुलझ जाए तो युवा चेतना को फिर से धर्म और साधना की ओर गतिशील किया जा सकता है। दर्शनशास्त्रियों, साधकों, संतों व आचार्यों को पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म संबंधी तथ्यों को वैज्ञानिक आधार देने पर मैं इसलिए इतना जोर डाल रहा हूँ कि अगर यह गुत्थी सुलझा ली जाए तो आत्मा की अमरता और कर्मफलवाद दोनों ही पुष्ट हो जाएँगे। तब सच्चा धर्म प्रारंभ होगा।

सच्चा धर्म

मंदिर, मसजिद, गुरुद्वारे या धर्मस्थानों में उमड़ती भीड़ को देखकर उसे ही वास्तविक धर्म समझने की भूल न करें। जब तक आत्मा की खोज नहीं की जाती, तब तक बाहरी कर्मकांड न तो उद्धार कर सकते हैं, न ही तीर्थयात्रा शुद्धि कर सकती है। वास्तविक मुक्ति (Liberation of Soul) तो आत्मा का साक्षात्कार और पूर्वजन्म की कड़ी का साक्षात्कार करने पर ही हो सकता है। और नहीं तो युवा वर्ग धर्म को ढकोसला ही मान रहा है। पूजा—पाठ व उपासनाओं से उसके बौद्धिक चित्त में प्रतिक्रिया ही उत्पन्न हो रही है।

श्रम व शक्ति का सही नियोजन

धर्मस्थानों एवं साधु—संतों के आडंबरपूर्ण कार्यों में लगनेवाला अरबों—खरबों रुपया यदि शोधकार्यों में लगे तो धर्म की पुन:स्थापना हो सकती है। भारतीय ऋषियों व महापुरुषों ने विशिष्ट अतींद्रिय ज्ञान के बल पर जिन कालातीत सच्चाइयों का अनुभव किया, क्या उसको शोध—समन्वित, प्रयोगसिद्ध, विज्ञान—सम्मत ढंग एवं स्वरूप में जन—जन तक पहुँचाया जा सकता है? मेरा मत है कि सर्वप्रथम करणीय कार्य पर ध्यान देना होगा; आत्मा के अस्तित्व, पुनर्जन्म, पूर्वजन्म के आँकड़ों को संकलित करने के साथ—साथ नवीन शोधकार्य करवाना होगा। उसका सारा कार्य अबाध गति से चलता रहे, इसके लिए ट्रस्ट या संगठन की स्थापना करके इस कार्य को आगे बढ़ाना

होगा। अतींद्रिय क्षमता—संपन्न लोगों को, जहाँ—जहाँ वे हों, साथ लेकर प्रयोगशाला के स्तर पर वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से दर्शन एवं धर्म की इन सच्चाइयों को सम्यक् रूप में प्रस्तुति दी जा सकती है।

अतींद्रिय का साक्षात्कार

अतीत में किए गए कर्मों का वर्तमान में भोग—इस तथ्य को विश्लेषित कर हम समाज एवं राष्ट्र में व्याप्त हिंसा, क्रूरता आदि दुष्कृतियों से छुटकारा दिलवाने का मार्ग खोज सकते हैं। हमारे पिछले जन्म भी हुए, आगे भी पुनर्जन्म होंगे—यह तथ्य यदि चेतना के स्तर पर सिद्ध हो जाता है तो यह सीख देने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि आप अच्छे बनो या बुराई का त्याग करो। फिर तो यह बिना उपदेश किए भी आचरण में उतरेगा। कोई भी प्रलोभन उस सचेत साधक से दुष्कृत्य करवा न सकेगा। एक व्यक्ति बदलेगा तो कई व्यक्ति बदलेंगे। एक दीप जलेगा तो कई दूसरे दीप जलेंगे। कई व्यक्ति जगेंगे तो राष्ट्र बदलेगा।

क्या करना होगा?

उपर्युक्त विचार चिंतन और क्रियान्विति के लिए प्रस्तुत किया गया है। इसमें हर चिंतनशील व्यक्ति की सहभागिता आवश्यक है। वर्तमान में मन से संबंधित समस्याएँ पूरे विश्व में अपनी जड़ें जमा रही हैं। जो सबसे पहली समस्या है, वह तनाव की है। कारण कुछ भी हो सकते हैं। समस्या के समाधान की जिम्मेदारी मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों और अध्यात्म—प्रेमियों पर आती है। हालाँकि योग और दर्शन ने ध्यानयोग की व्यापकता के द्वारा मार्गदर्शन करने का पर्याप्त प्रयास किया है। फिर भी, तनाव की समस्या इतनी विशाल और व्यापक है कि इसके लिए सामूहिक और विश्व स्तरीय प्रयास होने आवश्यक हैं।

जो व्यक्ति ध्यान, योग और प्राच्य विद्याओं के अभ्यासी हैं या इनमें रुचि रखते हैं, उन्हें अपने आस—पास, जहाँ भी समस्या है, उसके समाधान के लिए ध्यान, योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक एवं वैकल्पिक चिकित्सा के माध्यम से काम करना चाहिए और यह प्रयास संगठित एवं समन्वित ढंग से आगे बढ़े तो बेहतर है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि मन की एकाग्रता ही सफलता का मूलमंत्र है। एकाग्रता के कारण ही चंचलता पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। जैन दर्शन में एकाग्रता का निर्विवाद महत्त्व है। इसके माध्यम से अनेक मनोरोगों का भी निदान संभव है।

❑

अध्याय— 17

संकल्प : सफलता के सूत्र

● संकल्प कल्पवृक्ष सदृश है। संकल्प में 'कल्प' शब्द छुपा हुआ है।

● संकल्प की सिद्धि के लिए उसके प्रति आदर भाव आवश्यक है। यह सफलता का पहला सूत्र है।

● दूसरा सूत्र है—धारणा। धारणा होने पर ही संकल्प की सिद्धि होती है।

● सतत स्मृति है तीसरा सूत्र। संकल्प विषय की जब तक सतत स्मृति नहीं की जाएगी, तब तक संकल्प सिद्ध कैसे होगा?

● सफलता का चौथा सूत्र है—अर्थबंध। अर्थबंध का तात्पर्य है—संकल्प के प्रयोजन के साथ तादात्म्य स्थापित करना।

● संकल्प की पूर्णता देनेवाला पाँचवाँ सूत्र है—निदान। संकल्प विषय की तीव्र अभिलाषा से सफलता प्राप्त होती है।

संकल्प : सफलता के सूत्र

संकल्प कल्पवृक्ष सदृश है। संकल्प में 'कल्प' शब्द छुपा हुआ है। कल्प केवल कल्पना नहीं है। वह साकार होता है। व्यक्ति अपनी दृढ़ इच्छा—शक्ति से निश्चय करता है, वह पूर्ण होता है। सृष्टि का मूल आधार संकल्प है। 'संकल्प जा: सृष्टि:', संकल्प से सृष्टि का निर्माण होता है। इस जगत् में घटित होने के लिए कुछ नियम हैं। नियम के बिना कोई भी घटना घटित नहीं हो सकती है, इस सच्चाई को स्वीकार करना ही होगा। नियम के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता है। हमें उस नियम का ज्ञान हो या नहीं, नियम के बिना घटना घट नहीं सकती, इसलिए नियम को नियंता मानना ही होगा। सृष्टि का कोई भी कार्य नियमों के विपरीत नहीं हो सकता। हमें नियमों की श्रृंखला का ज्ञान हो या नहीं।

आदर से होती है सिद्धि

किसी भी संकल्प की सिद्धि के लिए उसके प्रति आदर भाव आवश्यक है। यह सफलता का पहला सूत्र है। जो भी संकल्प करते हैं, यदि उसके प्रति आदर नहीं है तो वह कैसे सिद्ध होगा? आदर का तात्पर्य संकल्प में ध्यान केंद्रित करना है, क्योंकि ध्यान केंद्रित करने से एकाग्रता पैदा होती है। एकाग्रता से तन्मयता आती है। उससे संकल्प साकार होता है।

तामली एक तपस्वी था। तापस श्रमण था। रूखा—सूखा भोजन लेकर तपस्या में संलग्न रहता था। उसका शरीर कृष, हाड़—माँस का ढाँचा मात्र रह गया था। वह अपने दंड—कमंडलु एक तरफ रखकर तामली नगर के उत्तर—पूर्व के भागों में प्रायोगमन अनशन भोजन—पानी का प्रत्याख्यान कर, काष्ठवत् निश्चेष्ट भूमि पर कायोत्सर्ग मुद्रा में लेटा हुआ था।

उस समय बलिचंचा राजधानी में रहनेवाले अनेक असुर कुमार, देव और देवियाँ अवधि ज्ञान से बाल तपस्वी तामली को देखते हैं। उसे देखकर वे परस्पर एक—दूसरे को बुलाते हैं। उन्हें बुलाकर वे परस्पर इस प्रकार बोले कि 'देवानुप्रियो! राजधानी इंद्र और पुरोहित से रहित है। देवानुप्रियो, हम इंद्र के अधीन हैं। हमारे सारे कार्य इंद्र के अधीन

हैं। बाल तपस्वी तामली नगरी के बाहर उत्तर—पूर्व दिग्भाग में संलेखना की साधना से युक्त हो भक्त पान का प्रत्याख्यान कर प्रायोगमन कर लेटा हुआ है। हम वहाँ पहुँचे।' वंदन, नमस्कार कर इस प्रकार बोले—'देवानुप्रिय! हम बलिचंचा राजधानी में रहनेवाले असुर कुमार देव और देवियाँ आपको वंदन करते हैं। सत्कार और सम्मानित करते हैं। आप बलिचंचा राजधानी को आदर दें, उसका सम्मान करें। इस प्रयोजन का निश्चय करें, निदान करें और स्थिति प्रकल्प कर वहाँ उत्पन्न होने का संकल्प करें। इससे आप मृत्यु के समय मृत्यु प्राप्त कर बलिचंचा राजधानी में उत्पन्न हो जाएँगे। आप हमारे इंद्र बन जाएँगे।'

यह प्रसंग 'भगवतीशतक', तीन उद्देश्य 1, सूत्र 38 और 40 में अंकित है। इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि संकल्प की स्थिति से, निदान से इंद्र बना जा सकता है। वे देव और देवियाँ अवधि ज्ञान के धारक थे। उन्होंने बार—बार संकल्प करने को कहा, लेकिन तपस्वी ने स्वीकार नहीं किया, आदर नहीं दिया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति संकल्प की सिद्धि के लिए इन पाँच बिंदुओं को स्वीकार करता है। पहला बिंदु है —आदर देना, उसमें ध्यान केंद्रित करना। आदर नहीं तो संकल्प—सिद्धि नहीं होती है।

धारणा से होती है सिद्धि

दूसरा सूत्र है—धारणा। धारणा होने पर ही संकल्प की सिद्धि होती है। धारणा का तात्पर्य है—समग्रता से संकल्प को स्वीकार करना, तभी वह साकार और सफल होता है। सफलता के लिए स्पष्ट अवधारणा होनी चाहिए। व्यक्ति का लक्ष्य तक पहुँचने का निश्चय नहीं होता है तो वह कहाँ पहुँचेगा? एक बंगाली महोदय ने स्टेशन मास्टर से कहा कि मुझे ससुरबाड़ी की टिकट दो, मेरी पत्नी वहाँ है। मुझे उसे लाना है। मैं लाने के लिए जा रहा हूँ। स्टेशन मास्टर ने स्टेशनों के नाम खोजे, सूरजबाड़ी नाम का स्टेशन था, फूलबाड़ी नाम का भी स्टेशन था। सारे नाम खोज लेने के बाद भी ससुरबाड़ी कहीं नहीं मिली। महाशय ने कहा कि ऐसा हो ही नहीं सकता है। ससुरबाड़ी मेरी सुसराल है। मेरी पत्नी वहाँ है। आप टिकट दीजिए। स्टेशन मास्टर ने कहा कि जब तक स्थान का निश्चय नहीं हो जाता है, कैसे टिकट दूँगा? जब तक लक्ष्य का निर्धारण नहीं हो जाता है, तब तक व्यक्ति वहाँ कैसे पहुँच पाएगा? किसी भी संकल्प की सिद्धि के लिए स्पष्ट अवधारणा होनी चाहिए। जब तक संकल्प नहीं होता है, वह सिद्ध कैसे होगा? कुछ लोग कहते हैं, मुझे सिद्धि चाहिए। केवल यह कह देने से सिद्धि मिल नहीं जाती है। किसकी सिद्धि चाहिए? किसी देवता को सिद्ध करना है, नौकरी के लिए सिद्धि चाहिए? शिक्षा के लिए सिद्धि चाहिए। स्पष्ट अवधारणा से ही संकल्प सिद्ध होता है।

सतत स्मृति दिलाती है सिद्धि

सतत स्मृति है तीसरा सूत्र—संकल्प तो किया, उसकी अवधारणा भी की, आदर भी दिया, धारणा भी स्पष्ट कर ली। संकल्प विषय की जब तक सतत स्मृति नहीं की जाएगी, तब तक संकल्प सिद्ध कैसे होगा? संकल्प विषय की सतत स्मृति आवश्यक है। जो व्यक्ति सतत स्मृति करता है, उसकी चेतना उस ओर प्रवृत्त हो जाती है। विस्मृति से लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते हैं। कोई व्यक्ति मंजिल के लिए संकल्पबद्ध हुआ, बीच में ही संकल्प को विस्मृत कर अन्य प्रलोभनों में उलझ गया। लक्ष्य था मंजिल को प्राप्त करना, लेकिन बीच में ही प्रलोभनों में उलझ जाए तो वह मंजिल तक नहीं पहुँच पाता है। सफलता का तीसरा सूत्र अत्यंत महत्त्वपूर्ण सूत्र है। लक्ष्य को सतत स्मृति में रखना होता है, तभी लक्ष्य की प्राप्ति हो पाती है। स्मृति पथ पर लक्ष्य आने पर उसमें गतिशीलता आ जाती है।

तादात्म्य से मिलती है सिद्धि

सफलता का चौथा सूत्र है—अर्थबंध। अर्थबंध का तात्पर्य है—संकल्प के प्रयोजन के साथ तादात्म्य स्थापित करना। लक्ष्य के साथ एकरूपता; लक्ष्य और व्यक्ति एकाकार हो जाएँ। जब लक्ष्य स्वयं से अभिन्न हो जाता है, तब ही पूर्ण हो पाता है। लक्ष्य की सिद्धि के लिए 'स्व' के साथ 'अर्थ' का अनुबंध आवश्यक है। उसका तात्पर्य है लक्ष्य और अर्थ में भेद न रहे। उसकी स्पष्टता रहे कि मैं किसलिए और क्यों संकल्प के लिए तत्पर हुआ हूँ!

तीव्र अभिलाषा देती है सिद्धि

संकल्प की पूर्णता देनेवाला पाँचवाँ सूत्र है—निदान। संकल्प विषय की तीव्र अभिलाषा से सफलता प्राप्त होती है। निदान दृढ़ इच्छा—शक्ति का निदर्शन है। तीव्र अभिलाषा के बिना मानसिक संकल्प नहीं बनता है। मानसिक संकल्प से भावना जुड़ती है। भावना से ही निदान पूरा होता है। सफलता के लिए संकल्प, संकल्प की पूर्णता के लिए तीव्र अभिलाषा निदान आवश्यक है। असुर कुमार देवी—देवता ने तामली तापस को अंतिम समय निदान करने का आग्रह किया। यदि आप हमारे इंद्र बनने का निदान करेंगे, तब निस्संदेह आप हमारे इंद्र बनेंगे। हम सब आपके अधीन होकर दिव्य भोगों को भोगेंगे।

तापस तामली ने उनकी बातों को स्वीकार नहीं किया, आदर नहीं दिया, अपनी साधना में निमग्न रहे। दृढ़ इच्छा—शक्ति से अपने अनशन में स्थिर रहे। न मरने की इच्छा, न कामभोगों की आकांक्षा, अपने आप में स्थिर रहे। इसलिए भवनपति में उत्पन्न नहीं हुए।

तामली तापस ने असुर कुमार के भोगों की आकांक्षा नहीं की, अपने संकल्प पर दृढ़ थे। समता से अपने संकल्प को संपन्न कर दूसरे देवलोक में इंद्र बने। जो संकल्प स्वीकार किया था, उसमें पूर्ण सफल हुए। अत: व्यक्ति को अपने संकल्प में दृढ़ रहना चाहिए।

सारांश रूप में यही माना जा सकता है कि दृढ़ संकल्प से ही व्यक्ति के आभामंडल का विकास होता है। संकल्प—शक्ति के बहुमुखी सूत्र होते हैं, जिनको आत्मसात् करके व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है।

❑

अध्याय— 18

संकल्प से जगाएँ आत्मविश्वास

- संकल्प वह शक्तिशाली प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है।
- अपने आपको पहचानने का तात्पर्य है—स्वयं को जानना, अपने अस्तित्व को जानना।
- श्रेष्ठता को अग्रसर करने से श्रेष्ठता बढ़ती है।
- रचनात्मक चिंतन को आगे बढ़ाने का सहज व सरल उपाय है कि शरीर को किसी सत्कर्म में लगाए रखें।
- चिंता नहीं, चिंतन करो; व्यथा नहीं, व्यवस्था करो।

सफलता का महामंत्र—आत्मविश्वास

आत्मविश्वास में कठिनाइयों के बड़े—से—बड़े पहाड़ को हटाने की क्षमता है। आत्मविश्वास से ही सफलता के सोपान पर आरोहण कर सकते हैं। आत्मविश्वास जगाने का प्रयोग है—संकल्प। संकल्प वह शक्तिशाली प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है।

संकल्प को जगाने की प्रक्रिया

'संकल्प' शब्द में 'कल्प' शब्द निहित है। भारतीय परंपरा में कल्पवृक्ष काम, कुंभ आदि कामना को पूर्ण करने के इष्ट हैं। संकल्प को पूर्णता तक ले जाने की कुछ विधियाँ हैं।

ध्येय तक संकल्प को ले जाने के लिए पहला काम है—संकल्प को निश्चित स्वरूप प्रदान करना। संकल्प से क्या चाहते हैं? जब तक उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं हो जाता है, तब तक वह पूर्ण कैसे होगा? मनुष्य का मस्तिष्क कंप्यूटर की तरह काम करता है। उसे जैसे निर्देश देंगे, वैसे ही वह काम करेगा।

ध्येय निश्चित कर उसे एक लाइन में सरल शब्दों में बनाएँ और उसे मस्तिष्क में उतार लें।

उदाहरणत: व्यक्ति को प्रथम श्रेणी से पास होना है तो उसे ललाट और नाक पर खड़ी लाइन मानसिक रूप से तर्जनी उँगुली से बनानी होगी। फिर आँखों के ऊपर भौंहों पर आड़ी लाइन, खड़ी लाइन को काटते हुए बनानी है। योग (+) का निशान बन जाएगा। चारों लाइनों को बढ़ाकर स्वस्तिक बनाएँ। इस स्वस्तिक में चारों खाली जगहों में अपने ध्येय लक्ष्य की शब्दावली को मानसिक चक्षुओं से लिखें—'मैं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होऊँगा।' याद रहे, इसका लेखन श्वास भीतर भरते हुए करेंगे। पूरक में किया हुआ संकल्प पूरा होता है। फिर उसे समय दे दीजिए कि यह कार्य अमुक तिथि तक पूरा होगा। आपको अपना अध्ययन बराबर करते रहना है। परीक्षा के समय भी सकारात्मक चिंतन रखना है—'मैं परीक्षा में सही उत्तर दूँगा। उत्तम श्रेणी से उत्तीर्ण होऊँगा।' इसी तरह से अन्य संकल्प को साकार किया जा सकता है।

अपने आपको पहचानें

आप कौन हैं? कहाँ से आए हैं? क्या करते हैं? दूसरों से सब तरह की जानकारी लेने की कोशिश करते हैं, किंतु अपने बारे में जानकारी करना चाहते नहीं हैं या कोशिश नहीं करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में अनंत क्षमता और शक्ति है। अपनी क्षमता और शक्ति को पहचानकर जगा लें तो दुनिया का कोई काम ऐसा नहीं, जिसे आप नहीं कर सकें।

अपने आपको पहचानने का तात्पर्य है—स्वयं को जानना, अपने अस्तित्व को जानना। अस्तित्व का ज्ञान चेतना का ज्ञान है, शक्ति का ज्ञान है। शक्ति और आनंद का अनुभव ही आत्मा का अनुभव है। आत्मा के स्वरूप का बोध होने से व्यक्ति में आत्मविश्वास का उदय होने लगता है।

श्रेष्ठता पर ध्यान दें

व्यक्ति में श्रेष्ठता—अश्रेष्ठता दोनों होती हैं। हम श्रेष्ठता पर ध्यान दें, अश्रेष्ठता को गौण करें। परिवार के बड़े सदस्य अकसर बच्चों की कमियों पर ध्यान देते हैं। समय—समय पर उनको उजागर भी करते हैं। सोचते तो यही हैं कि इससे बच्चों में सुधार होगा। अतिथि या दूसरा व्यक्ति घर में आता है, तब यही कहते हैं कि 'टीनू बड़ा शैतान है, कहना नहीं मानता। दिन भर टी.वी. देखता है, खेलता रहता है। बड़ा नटखट है।' बच्चा नटखट नहीं होगा तो क्या बूढ़ा बाबा नटखट होगा? यदि बालक शांत, चुपचाप बैठ जाए तो आप भी परेशान हो जाएँगे। चिंतित होंगे कि क्या हो गया है इसको? बचपन में बालक अपनी ऊर्जा का उपयोग करता है। यदि वह बालसुलभ चंचलता, चपलता में अपनी ऊर्जा का उपयोग नहीं करेगा तो वही ऊर्जा नकारात्मक सोच और हिंसा आदि गतिविधियों में लगेगी। इंग्लैंड में एक शोध किया गया कि जो बालक क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल आदि खेलते हैं, वे हिंसक वारदातों में कम लेते हैं।

बालकों की कमियों को उजागर करने से उनमें नकारात्मक सोच बढ़ जाती है। उनके गुणों को, अच्छाइयों को बताने से उनमें सकारात्मक सोच बढ़ाई जा सकती है। इसलिए श्रेष्ठता को अग्रसर करने से श्रेष्ठता बढ़ती है।

नकारात्मक सोच पास न आने दें

नकारात्मकता का चिंतन और विचार व्यक्ति को रचनाकर्मी नहीं बनने देता है। नकारात्मक विचार बड़े शक्तिशाली होते हैं। बरतन टूट नहीं जाएँ, नई गाड़ी लाए हैं, कहीं हादसा नहीं हो जाए? इससे मस्तिष्क में जो विचार उभरते हैं, वे टूटने, हादसा आदि के चित्रों को स्पष्ट उभारते हैं। सोचते तो हैं कि बुरा नहीं हो जाए, बुरा नहीं हो जाए। मन में विचार तो यही चलता है, किंतु बुरा होने की घटना मानस—पटल पर स्पष्ट अंकित होती जाती है। अच्छी बात या सकारात्मक सोच के लिए चिंतन भी करते हैं तो उसका स्पष्ट चित्र मानस—पटल पर अंकित नहीं हो पाता।

रचनात्मक सोच को आगे बढ़ाएँ

रचनात्मक चिंतन को आगे बढ़ाने का सहज व सरल उपाय है कि शरीर को किसी सत्कर्म में लगाए रखें। सत्कर्म, सद्विचार एक—दूसरे के पूरक हैं। सद्विचार सत्कर्म की पहली सीढ़ी है। विचार शब्द में उतरता है, शब्द वाक्य बनते हैं। वाक्य ही सद्कर्म को विकसित करते हैं। रचनात्मक कार्य व्यक्ति की सोच में परिवर्तन लाते हैं। रचनाकर्मी स्वयं का हित करता है; साथ ही समाज के विकास में सहयोगी बनता है। सद्विचार से सत्कर्म बनता है, सत्कर्म श्रेष्ठ समाज की रचना करता है।

श्रेष्ठ समाज के निर्माण में सद्विचार ही बीज का कार्य करता है। बीज का वपन, पोषण और संवर्द्धन समाज से स्वयं मिलता रहता है। यह चक्र है। एक बार चक्र घुमा दो तो फिर वह अपने आप घूमने लगता है।

चिंता नहीं, चिंतन करो; व्यथा नहीं, व्यवस्था करो

आचार्य तुलसी का यह अमृत संदेश मस्तिष्क में नई रोशनी पैदा करता है। किसी कार्य को करने के लिए चिंता

की जरूरत नहीं, बल्कि चिंतन करो। उसमें लाभ और अलाभ के परिणामों पर विचार कर लो। लाभ के अंक अधिक हैं तो किसी से पूछने की कोई अपेक्षा नहीं। कार्य शुरू कर दो। यदि अलाभ के अंक अधिक हैं तो रुक जाओ। उसके कारणों की खोज करो कि कहाँ कमी है। दो दिन रुक जाओ। पुन: चिंतन करो। यदि वही परिणाम आ रहे हैं तो इस कार्य को छोड़ दो। नई योजना और कार्य के लिए चिंतन करो। दूसरे कार्य की व्यवस्था करो, न कि व्यथा करने बैठ जाओ। व्यथा की कोई अपेक्षा नहीं, व्यवस्था का सुंदर ढंग से संचालन करो। कार्य को गति देने के लिए संपूर्णता से व्यवस्था करो। कई बार ऐसा होता है, आस—पास और अपने निजी व्यक्ति को खुश करने के लिए झूठी प्रशंसा करते हैं। हम उस सच्चाई को पहचान नहीं पाते। इसलिए प्रशंसा के स्थान पर सही प्रस्तुति को अंजाम दें। प्रशंसा सुनने में अच्छी लगती है, लेकिन उसके कोई परिणाम नजर नहीं आते। व्यक्ति स्वयं प्रशंसा से अपने आपका गलत मूल्यांकन कर बैठता है।

कार्य को मनोयोग से करें

किसी कार्य को प्रारंभ करो तो पूरी तरह से मनोयोग से करो, किंतु—परंतु को निकाल दो। पूरी शक्ति और चेतना से उसे पूरा करने का निश्चय कर लो। समग्रता से उसे पूरा करने में जुट जाओ। मनोयोग से किया गया कार्य असफलता नहीं लाता। इससे मन की एकाग्रता तो सधती ही है, साथ ही कार्य में कौशल भी आता है। कुशलता से किया गया कार्य सुंदर और श्रेष्ठ होता है।

आलोचना से उदास न हों

किसी भी कार्य को करेंगे तो उसकी प्रशंसा और आलोचना दोनों हो सकती हैं। जिस कार्य की प्रशंसा या आलोचना न हो, वह कार्य श्रेष्ठ कैसे हो सकता है? पश्चिम का एक दार्शनिक अपने विचारों की श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध था। उसका एक आलोचक उसे बुरा समझता था कि यह कैसा आदमी है, जो पुराने विचारों को इनकार कर रहा है? आलोचक ने एक दिन गुस्से में उस विचारक को गाली और गंदे शब्दों का प्रयोग करते हुए एक कॉपी के 60 पृष्ठ भर दिए। उसने पी.ए. को बुलाया और कहा कि ''जाओ, तुम उस दार्शनिक को यह कॉपी भेंट कर आओ। कह देना, इसमें आपके लिए श्रेष्ठ सामग्री परोसी गई है।'' पी.ए. गया। दार्शनिक आराम से बैठा आकाश निहार रहा था। पी.ए. ने कॉपी भेंट करते हुए कहा कि ''आपके लिए यह सामग्री संपे्रषित की गई है।'' दार्शनिक ने कॉपी के पेज पलटने शुरू किए। एक—एक पेज उलटकर कॉपी को आराम से रख दिया। देखनेवाला पी.ए. हैरान था। किसी सामान्य व्यक्ति को भी यदि ऐसी भद्‍दी, बेवजह इतना सारा बेहूदा लिखा जाए तो आदमी गुस्से में तमतमा जाए; लेकिन वह गुस्से में नहीं आया, न उसके चेहरे एवं भाव—भंगिमा में कोई परिवर्तन आया; न उसने उसके बारे में कुछ कहा। उसने उपेक्षा भाव से कॉपी रख दी। वह पुन: आकाश की ओर प्रेक्षा करने लगा।

पी.ए. वापस लौट आया। उसने पूछा, ''दे आए हो वह कॉपी?''

''हाँ, दे आया।''

''क्या कहा, क्या किया?''

''कॉपी देने पर उसने उसे पढ़ा और शांत भाव से रख दिया और ध्यान में लीन हो गया।''

'प्रशंसा या निंदा कुछ भी नहीं की। प्रशंसा नहीं, निंदा में भी एक—दो शब्द कहता, अपने चेहरे को बिगाड़ता, कॉपी को फेंक देता तो लगता कि मैंने जो कुछ लिखा, उसका कोई प्रभाव हुआ। निंदा और प्रशंसा करनेवाला मेरे पक्ष या विपक्ष में है।'

उपेक्षा करनेवाला खतरनाक होता है। आलोचना भी करता है तो कम—से—कम मेरे विचार के प्रतिपक्ष में कुछ अभिव्यक्ति दे रहा है। उपेक्षावाला, तटस्थ रहनेवाला विचारों को इस तरह से इनकार कर देता है। उसका कोई जवाब नहीं हो सकता है। आलोचना भी व्यक्ति को सोचने हेतु मजबूर कर दे। आलोचना से उदास होनेवाला जीवन में सफल नहीं हो सकता है। याद रहे, जो व्यक्ति आलोचना से कुछ सीख नहीं लेता, वह गतिशील नहीं हो सकता।

असफलता सफलता की कुंजी

असफलता में ही सफलता छुपी हुई है। 'असफल' शब्द में सफल जुड़ा है। असफलता एक नया पाठ देती है। व्यक्ति सफलता से शायद इतना नहीं सीखता, जितना असफलता से सीखता है।

एडीसन प्रयोग पर प्रयोग कर रहा था। एक नहीं, दो—तीन नहीं, पूरे 899 प्रयोग असफल हो गए; पर कोई निराशा नहीं। वह उसी उत्साह, उल्लास, लगन से कार्य में जुटे रहे। उनकी पत्नी भी हैरान थी कि कैसा आदमी है? किस फौलाद का बना है? लेकिन फिर आज प्रसन्नता से वह रोमांचित हो गए कि उनका 900वाँ प्रयोग सफल रहा और विद्युत् बल्ब का आविष्कार हो गया।

हर असफलता ने सफलता के द्वार उद्घाटित किए। व्यक्ति के जीवन में सीधी सफलता आ जाए, ऐसे सोचनेवाले कभी सफल नहीं हुए हैं। सफल वे ही हुए हैं, जिन्होंने असफलता की सीढ़ी पर पाँव रखकर सफलता की मंजिल हासिल की है। यह संकल्प बल आत्मविश्वास जगाने पर ही हो सकता है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि आत्मविश्वास संकल्प का दूसरा पर्याय है। इससे असफलता को सफलता में परिवर्तित किया जा सकता है। श्रेष्ठता की प्राप्ति, नकारात्मक सोच का परित्याग, सकारात्मक सोच का विकास तथा सकारात्मक कार्यों से आत्मविश्वास की प्राप्ति की जा सकती है।

❑

अध्याय— 19

कैसे हो भय का निवारण?

- वर्ग संघर्ष जब हिंसा का रूप ले लेता है तो समाज और राष्ट्र में भय व्याप्त हो जाता है।
- चोरी, डकैती, वासना, जमीन—जायदाद, मार—पीट, आसक्ति आदि से भय पैदा होता है।
- व्यक्ति में इच्छा—शक्ति प्रबल हो तो भय का निवारण भी किया जा सकता है।
- संकल्प—शक्ति के साथ अभय की अनुप्रेक्षा का अभ्यास कर भय से मुक्ति पाई जा सकती है।
- दीर्घ श्वास प्रेक्षा एवं ज्योति केंद्र पर श्वेत रंग का ध्यान भय—मुक्त करने में सहयोगी बनता है।

भय क्यों पैदा होता है?

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के लोग जब एक—दूसरे का सहयोग करते हैं तो सभी लोग प्रेमपूर्वक और निर्भय होकर जीवन जीते हैं। समाज परिवारों में विभक्त है। सभी परिवार मिलकर ही समाज का निर्माण करते हैं। अनेक समाज मिलकर राष्ट्र का निर्माण करते हैं। समाज में जब कई परिवार धनी और कई परिवार निर्धन बन जाते हैं तो वर्ग—भेद पैदा हो जाता है। वर्ग—संघर्ष जब हिंसा का रूप ले लेता है तो समाज और राष्ट्र में भय व्याप्त हो जाता है।

जाति—भेद भी भय का कारण बनता है। कई जातियाँ उच्च और कई निम्न श्रेणी में आ जाने से जातीय संघर्ष शुरू हो जाता है। निम्न श्रेणी के लोग अपनी उन्नति के लिए आरक्षण माँगने लगते हैं। संघर्ष हिंसा का रूप ग्रहण कर लेता है तो अन्य जातियों में भय व्याप्त हो जाता है। आंदोलन के दौरान घर जला दिए जाते हैं, तोड़—फोड़ की जाती है और उसके चलते सरकार को भी सख्त काररवाई करनी पड़ती है। आंदोलनकारी गोलियों से मारे जाते हैं। इससे हिंसा और भी भड़क उठती है और समाज में भय व्याप्त हो जाता है।

राष्ट्र व समाज अपने स्तर पर आंशिक प्रतिकार का रास्ता अपनावें, तभी समाज और राष्ट्र अभय बन सकते हैं। हिंसा भय का बहुत बड़ा कारण है। हिंसा मन में उत्पन्न होती है और फिर वाणी में उतरती है तथा अंत में हत्या का रूप ले लेती है। हिंसक व्यक्ति खुद हिंसा करता है और फिर अपने आपको मजबूत करने के लिए हिंसक दल का गठन करके दूसरों से हिंसा करवाता है। दूसरा कोई हिंसक दल उसके अलावा भी है तो उसका समर्थन भी करता है। इस तरह हिंसा व्यापक रूप धारण करती चली जाती है। परिणामस्वरूप समाज और राष्ट्र व्यापक रूप से भयग्रस्त हो जाते हैं।

कौन उभारता है भय?

राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव जीतने के लिए जाति विशेष और वर्ग विशेष को खुश करने के लिए अपने चुनाव घोषणा—पत्रों में अनेक लुभावने वादे करती रहती हैं। वोट पाकर जीत जाने के बाद उन वायदों को भूल जाते हैं। परिस्थिति जस—की—तस बनी रहती है। यह भी हिंसा का एक कारण बनता है। जिस वर्ग विशेष के वादे पूरे नहीं किए गए, वह हिंसा पर उतर आता है। इससे भी समाज में भय व्याप्त हो जाता है। झूठे वादे करना भी भय का कारण बनता है। पारिवारिक और व्यक्तिगत तौर पर भी अगर कोई अपना वायदा नहीं निभाता तो हत्या वगैरह की घटनाएँ होती रहती हैं। इस वजह से व्यक्ति और परिवार विशेष भी भयग्रस्त हो जाते हैं; क्योंकि वायदे करना और

नहीं निभाना भी भय का एक कारण बनता है। इसलिए यह जरूरी है कि झूठे वायदे न किए जाएँ, न करवाए जाएँ और न ही झूठे वायदों का समर्थन किया जाए। मन, वाणी और तन से ही इस कार्य को अंजाम देने से अभय का वातावरण बन सकता है।

डकैत फैलाते हैं भय

चोरी और डकैती भी समाज में भय फैलाती रहती है। कुछ लोगों को अमीरी का जीवन जीते देखकर कुछ बलवान् और निर्धन लोग चोरी या डकैती का रास्ता अपना लेते हैं। चोर लोगों से बचने के लिए लोग अपनी सुरक्षा के लिए पहरेदार नियुक्त करते हैं; किंतु चोर इतने शातिर होते हैं कि सबको चकमा देकर, घर में सेंधमारी करके धन चुरा ले जाते हैं। एक बार किसी के घर में चोरी हो जाती है तो बाकी के सभी घरों में भय व्याप्त हो जाता है। वे सोचते हैं, कभी हमारा भी घर चोरों का शिकार बन सकता है! इस सोच से वे निरंतर भयग्रस्त रहते हैं। इसी तरह डकैत हथियारों से लैस होकर किसी गाँव या कस्बे को लूटते हैं तो समाज के सभी लोग भयग्रस्त हो जाते हैं। वे सोचते हैं, कभी—न—कभी हमारा भी धन लुटेरे लूट लेंगे! सरकार और पुलिस लुटेरों को पकड़ नहीं पाती तो और भी भय व्याप्त हो जाता है। कई लोग अपना धन कुछ लोगों को उधार देते हैं। उनमें कुछ तो उधार का धन लौटा देते हैं, किंतु कुछ ऐसे भी होते हैं, जो धन लौटा नहीं पाते हैं। उनमें भी भय व्याप्त हो जाता है। वे सोचते हैं, उधार देनेवाला हम पर मुकदमा दायर न कर दे! वर्षों तक मुकदमा लड़ना पड़ सकता है। इस तरह उधार लेकर न चुका सकनेवाले लोग भयग्रस्त हो जाते हैं। उधार देनेवाले भी भयग्रस्त हो जाते हैं; क्योंकि मुकदमा लड़ना भी कोई सहज कार्य नहीं है। यात्रा करने लोग निकलते हैं तो बराबर भयग्रस्त बने रहते हैं कि कहीं कोई जेबकतरा हमारी जेब काटकर धन न हड़प ले। रेल व बसों में यात्रा करनेवाले भय के मारे नींद नहीं ले पाते हैं। उन्हें यह डर सताता है कि कोई सामान न चुरा ले। इस तरह चोरी या डकैती करनेवाला भी भयभीत रहता है और जिसके यहाँ चोरी या डकैती हो सकती है, वह भी भयभीत रहता है।

उच्छृंखल वासना से पैदा होता है भय

आजकल लड़के और लड़कियाँ स्कूल व कॉलेजों में पढ़ने जाते हैं। कुछ लड़के व लड़कियाँ ऑफिसों में काम करते हैं। आए दिन सुनने में आता है कि अमुक लड़का अमुक लड़की के साथ प्ेरम संबंधों के कारण उस लड़की को लेकर भाग गया, क्योंकि घरवाले उनकी शादी से सहमत नहीं हो सकते थे। काम करनेवाले विवाहित युवक—युवतियों में भी अवैध यौन संबंधों की खबरें आती रहती हैं। नतीजन उन लड़के व लड़कियों के माँ—बाप भी ऐसी वारदातों से भयभीत रहते हैं। शादीशुदा दंपतियों में भी एक—दो संतान हो जाने के बावजूद संबंधों में ऐसी दरार पड़ जाती है कि नतीजा तलाक का होता है। यौन संबंधों में मर्यादा का उल्लंघन होना माता—पिता और संतान दोनों के लिए भय का कारण बनता है। यही भय आगे चलकर तनाव का कारण बन जाता है।

भय की जड़ : जमीन—जायदाद

परिग्रह या जमीन—जायदाद भी भय का बहुत बड़ा कारण है। परिग्रह की सुरक्षा करना बहुत महत्त्व रखता है। घर के पहरेदार, सरकारी पुलिस और फौज सब संपत्ति की सुरक्षा के लिए ही हैं। फिर भी सुरक्षा हो नहीं पाती। आए दिन वारदातें होती रहती हैं। वारदातों का कारण है धन, जिसे सुख का साधन मानकर लोग उसके पीछे भाग रहे हैं और निरंतर दु:खी बने रहते हैं। उन्हें यह भय सताता है कि कभी कोई वारदात न हो जाए! जमीनों को लेकर भी

अनेक वारदातें होती रहती हैं। किसी की जमीन पर कोई कब्जा जमाकर बैठ जाता है। उसे जल्दी बेदखल नहीं किया जा सकता, क्योंकि मुकदमों में वर्षों बीत जाते हैं। इसलिए जमीन भी भय का कारण बनती है।

नकारात्मक भावों से भय

क्रोधी, अहंकारी, चालबाज और लोभी व्यक्ति के क्रिया—कलाप भी लोगों में भय फैलाते हैं। क्रोध के वश होकर कोई व्यक्ति किसी के साथ मार—पीट भी कर सकता है। इसलिए लोग डरे—सहमे रहते हैं। अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति से भी लोग भयभीत रहते हैं, क्योंकि ऐसा व्यक्ति कभी दूसरों को हीन समझकर बुरा बरताव कर सकता है। चालबाज या मायाचारी व्यक्तियों से भी लोग डरे व सहमे रहते हैं। ऐसा व्यक्ति किसी के भी साथ षड्यंत्र रचकर उसे अपने जाल में फँसा सकता है। लोभी व्यक्ति अपने लोभ के चलते कभी भी दूसरों का अहित कर सकता है। इसलिए इन चारों दुर्गुणों को 'कषाय' कहा गया है। इनका आचरण करनेवाला किसी कसाई से कम नहीं होता। ऐसे व्यक्ति से आम लोग भयभीत रहते हैं।

आसक्ति पैदा करती है भय

कुछ लोगों में अपनों के प्रति इतना लगाव होता है कि उनमें उन्हें कोई भी अवगुण नजर नहीं आते। पर वास्तव में उनके वही अपने दूसरों में भय फैलाते हैं। शिकायत आने पर भी वे उसे दरकिनार कर देते हैं। समाज में भय फैलने का यह भी कारण होता है। कुछ लोग अन्यों से द्वेष पाले रहते हैं। जिससे द्वेष रखा जाता है, वह व्यक्ति द्वेष करनेवालों से भयभीत रहते हैं। इसका नतीजा कलह होता है। समाज में कुछ लोग वाणी संयम नहीं होने से अंट—संट बोलते रहते हैं। इससे भी समाज में भय का वातावरण बनता है। कई लोग चुगलखोर होते हैं, दूसरों की चुगली करते रहते हैं। यह भी भय फैलने का एक कारण बनता है। कई लोगों को अच्छे कार्यों में रुचि नहीं होती और बुरे कार्यों में अरुचि नहीं होती। इसके कारण भी भय का वातावरण बनता है। कई लोग किसी के खिलाफ षड्यंत्र रचते रहते हैं और अपने भीतर गलत दृष्टिकोण का काँटा पालते रहते हैं। इससे भी भय का वातावरण बनता है। भय के वातावरण में पलनेवाला समाज कभी भी स्वस्थ समाज नहीं होता। वह रुग्ण समाज होता है। रुग्णावस्था में कोई भी समाज उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता।

हम लोगों ने भय के कारणों की चर्चा की। अगर व्यक्ति में इच्छा—शक्ति प्रबल हो तो भय का निवारण भी किया जा सकता है। अगर इच्छा—शक्ति प्रबल न होकर कमजोर है तो अभ्यास के द्वारा उस कमजोरी से मुक्त किया जा सकता है। इसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्तियों को इन बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए—

1. संकल्प—शक्ति से दुर्गुणों का त्याग करना।
2. संकल्प ग्रहण करने के बाद उन्हें पुष्ट करने के लिए अनुप्रेक्षा करना।
3. अपनी शक्तियों को पुष्ट करने के लिए प्रेक्षाध्यान की आराधना करना।
4. अनुप्रेक्षा और प्रेक्षा की निरंतरता को बनाए रखना।
5. हिंसा का सहारा लेनेवाली संस्थाओं को अहिंसक प्रतिकार की प्ेररणा देना।

अब इन बिंदुओं पर प्रयोग इस प्रकार करें—

1. संकल्प—शक्ति द्वारा दुर्गुणों का त्याग करना

मैं संकल्प लेता हूँ कि किसी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में विचलित नहीं होऊँगा। कोई भी परिस्थिति आने पर उसे समभाव से सहन करूँगा। भयभीत होने से परिस्थितियों में सुधार नहीं होता, बल्कि और बिगाड़ हो

जाता है। चिंता करने से भयभीत होने के अलावा कुछ भी नहीं होता। चिंतन करके समस्या का समाधान खोजूँगा।

2. अनुप्रेक्षा : सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

1. महाप्राण ध्वनि 2 मिनट

2. कायोत्सर्ग—शरीर को स्थिर और शिथिल करें। अपने चित्त को शरीर के अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक में ले जाएँ। शिथिल होने का सुझाव दें। शिथिल हो जाए...शिथिल हो रहा है...शिथिल हो गया है।5 मिनट

अनुभव करें कि आपके चारों ओर नीले रंग के परमाणु फैले हुए हैं। मयूर की गरदन के समान चमकता हुआ नीला रंग। अब इस नीले रंग का श्वास लें। अनुभव करें कि प्रत्येक श्वास के साथ नीले रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। 3 मिनट

3. विशुद्धि केंद्र पर नीले रंग का ध्यान करें। 3 मिनट

4. ज्योति केंद्र पर चित्त को केंद्रित कर अनुप्रेक्षा करें—'सहिष्णुता का भाव पुष्ट हो रहा है। मानसिक संतुलन बढ़ रहा है।' इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें, फिर इसका नौ बार मानसिक जप करें। 6 मिनट

5. अनुचिंतन करें—

● शारीरिक संवेदन—ऋतुजनित संवेदन, रोगजनित संवेदन।

● मानसिक संवेदन—सुख—दु:ख, अनुकूलता—प्रतिकूलता।

● भावात्मक संवेदन—भय की वेदना—विरोधी विचार, विरोधी स्वभाव, विरोधी रुचि।

● इन संवेदनों से मैं प्रभावित हो रहा हूँ, किंतु इनके प्रभाव को कम करना है।

● यदि इनका प्रभाव बढ़ा तो शक्तियाँ क्षीण होंगी। जितना इनसे कम प्रभावित होऊँगा, उतनी ही मेरी शक्तियाँ बढ़ेंगी।

● इसलिए सहिष्णुता का विकास मेरे जीवन की सफलता का महामंत्र है।

10 मिनट

6. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 2 मिनट

अभय की अनुप्रेक्षा

1. महाप्राण ध्वनि 2 मिनट

2. कायोत्सर्ग—(सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा के अनुसार) 5 मिनट

3. अनुभव करें कि आपके चारों ओर गुलाबी रंग के परमाणु फैले हुए हैं। गुलाब के फूल की भाँति चमकते हुए गुलाबी रंग का श्वास लें। अनुभव करें कि प्रत्येक श्वास के साथ गुलाबी रंग के परमाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। 3 मिनट

4. आनंद केंद्र पर गुलाबी रंग का ध्यान करें। 3 मिनट

5. दर्शन केंद्र पर चित्त को केंद्रित कर अनुप्रेक्षा करें—'अभय का भाव पुष्ट हो रहा है। भय का भाव क्षीण हो रहा है।'

इस शब्दावली का नौ बार उच्चारण करें। फिर नौ बार मानसिक जप करें। 5 मिनट

6. अनुचिंतन करें—

● भय से विकसित शक्तियाँ कुंठित हो जाती हैं। नई शक्तियाँ विकसित नहीं हो पातीं।

● इसलिए मुझे अभय होने का अभ्यास करना चाहिए।

● जो डरता है, उसे सभी डराते हैं। भय आदमी को कमजोर बनाता है।

● कमजोर आदमी को कोई सहयोग नहीं करता। शक्ति के विकास के लिए अभय की साधना करूँ, यह मेरा दृढ़ निश्चय है।

● मैं निश्चित ही भय से छुटकारा पा लूँगा। 10 मिनट

7. महाप्राण ध्वनि के साथ प्रयोग संपन्न करें। 2 मिनट

शक्ति को विकसित करने के लिए प्रेक्षाध्यान की साधना

1. महाप्राण ध्वनि—9 बार।

2. कायोत्सर्ग—

● शरीर को स्थिर, शिथिल और तनाव—मुक्त करें। मेरुदंड और गरदन को सीधा रखें। अकड़न न हो। मांसपेशियों को ढीला छोड़ें। शरीर की पकड़ को छोड़ें। ममत्व का विसर्जन करें।

● चित्त को पैर से सिर तक क्रमशः शरीर के प्रत्येक भाग पर ले जाएँ। पूरे भागों में चित्त की यात्रा करें। शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। प्रत्येक मांसपेशी और प्रत्येक स्नायु शिथिल हो जाए। पूरे शरीर की शिथिलता को साधें। गहरी एकाग्रता एवं पूरी जागरूकता रखें।

● पूरे ध्यानकाल तक कायोत्सर्ग की मुद्रा बनी रहे। शरीर को अधिक—से—अधिक निश्चल रखने का अभ्यास करें। आंतरिक मौन के अभ्यास के लिए कंठ का कायोत्सर्ग करें। चित्त को स्वर यंत्र पर केंद्रित करें। स्वर यंत्र की शिथिलता को साधें।

3. अंतर्यात्रा—

● चित्त को शक्ति केंद्र पर ले जाएँ। ऊपर उठाएँ। सुषुम्ना के मार्ग से ज्ञान—केंद्र तक लाएँ।

● फिर उसी मार्ग से शक्ति केंद्र तक नीचे लाएँ। नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे सुषुम्ना में चित्त की यात्रा करें। वहाँ पर होनेवाले प्राण के प्रकंपनों का अनुभव करें। पूरी चेतना को सुषुम्ना में समेट लें।

● (एक—दो मिनट बाद) चित्त की गति को श्वास की गति के साथ जोड़ें। श्वास छोड़ते समय चित्त को नीचे से ऊपर ले जाएँ और श्वास लेते समय चित्त को ऊपर से नीचे लाएँ।

4. दीर्घ श्वास प्रेक्षा—

● श्वास की गति को मंद करें। धीरे—धीरे लंबा श्वास छोड़ें और लंबा श्वास लें। श्वास को लयबद्ध और समताल करें। पहली बार श्वास को लेने और छोड़ने में जितना समय लगे, उतना ही समय क्रमशः प्रत्येक आवृत्ति में लगे।

● श्वास के कंपन नाभि तक पहुँचें। श्वास लेते समय पेट की मांसपेशियाँ फैलती हैं और श्वास छोड़ते समय सिकुड़ती हैं। चित्त को नाभि पर केंद्रित करें। पेट की मांसपेशियों के फैलने और सिकुड़ने का अनुभव करें तथा उसके द्वारा आते—जाते श्वास का अनुभव करें। प्रत्येक श्वास की जानकारी बनी रहे। जानते हुए श्वास लें और जानते हुए श्वास छोड़ें।

● गहरी एकाग्रता और पूरी जागरूकता के साथ दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास करें। अभ्यास की निरंतरता को बनाए रखें।

● (कुछ समय बाद) चित्त को नाभि से हटाकर दोनों नथनों के भीतर संधि स्थल पर केंद्रित करें। लयबद्ध लंबा श्वास चालू रखें। आते—जाते प्रत्येक श्वास का अनुभव करें। प्रत्येक श्वास को जानते हुए लें और जानते हुए छोड़ें।

चित्त की सारी शक्ति श्वास को देखने में लगा दें। केवल श्वास का अनुभव करें।

● यदि विकल्प आते हैं तो उन्हें रोकने का प्रयत्न न करें। केवल द्रष्टा भाव से देखें और बीच—बीच में श्वास संयम का प्रयोग करें या जीभ को उलटकर तालु से लगा दें। श्वास के प्रति जागरूकता बनी रहे। केवल श्वास का अनुभव करें।

5. ज्योति—केंद्र पर श्वेत रंग का ध्यान

● चित्त को ललाट के मध्य भाग ज्योति—केंद्र पर केंद्रित करें। वहाँ पर चमकते हुए श्वेत रंग का ध्यान करें। अनुभव करें—पूर्णिमा का चाँद उग रहा है, उसकी श्वेत रश्मियाँ ज्योति—केंद्र पर गिर रही हैं। या अन्य किसी चमकती हुई श्वेत वस्तु का आलंबन लें। ज्योति—केंद्र पर श्वेत रंग का साक्षात्कार करें।

● (दो—तीन मिनट बाद) अनुभव करें—पूरे ललाट में भीतर तक श्वेत रंग के परमाणु प्रवेश कर रहे हैं। पूरा ललाट श्वेत रंग के परमाणुओं से भर रहा है। शांति एवं आनंद का अनुभव हो रहा है। क्रोध शांत हो रहा है। आवेग और आवेश शांत हो रहे हैं। वासनाएँ शांत हो रही हैं।

● आँखों को बिना खोले धीरे—धीरे आसन बदलें—वंदनासन में आएँ।

● 'अरहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू शरणं पवज्जामि, केवली पण्णतं धम्मं शरणं पवज्जामि' का तीन बार उच्चारण करें। दो—तीन लंबे श्वास के साथ अभ्यास संपन्न करें।

उपर्युक्त सभी अभ्यासों को निरंतर जारी रखें। इससे व्यक्ति भय—निवारण की प्रक्रिया को आगे बढ़ा सकेगा और अभय बन सकेगा। प्रेक्षाध्यान के और भी कई प्रकार हैं; जैसे—समवृत्ति श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केंद्र प्रेक्षा, लेश्याध्यान आदि—आदि। प्रारंभ में साधना की दृष्टि से दीर्घश्वास प्रेक्षा का अभ्यास पर्याप्त रहता है, फिर धीरे—धीरे अभ्यास की परिपक्वता के साथ प्रयोगों को बढ़ाया जा सकता है।

आज विश्व में अनेक प्रकार के भेदभाव फैले हुए हैं। जब तक इन भेदभावों को समाप्त नहीं किया जाता है, तब तक संघर्ष चलता ही रहेगा; किंतु यदि इन संघर्षों को हिंसक गतिविधियों से हटाकर अहिंसक प्रतिकार के लिए राजी कर लिया जाए तो आज विश्व में फैली हिंसा को मानव जाति के स्तर पर खत्म किया जा सकता है। हिंसा का सहारा लेनेवाली संस्थाओं एवं व्यक्तियों से संपर्क करें और उन्हें अहिंसक प्रतिकार की पे्ररणा व प्रशिक्षण दें। इसके लिए जरूरी है कि देश में फैले सभी राजनीतिक, सामाजिक संगठनों का एक सम्मेलन बुलाया जाए और उसमें चर्चा के बाद सर्वसम्मति हो या प्रस्ताव पारित किया जाए कि किसी भी अन्याय के प्रतिकार के लिए अहिंसक प्रतिकार ही किया जाएगा। अगर ऐसा हो जाता है तो न तो समाज को हिंसा का फल भोगना पड़ेगा और न ही सरकार को गोलियाँ चलाकर आंदोलनकारियों की हत्या करने को मजबूर होना पड़ेगा। अगर यह प्रयोग देश में सफल हो जाता है तो इसे विश्व स्तर पर भी किया जा सकता है। भय का निवारण हो जाने से सभी देशवासी खुशी का अनुभव करेंगे।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि हिंसक शक्तियाँ भय का मुख्य कारण हैं। भय के बहुमुखी कारण भी होते हैं। संकल्प—शक्ति, दीर्घ श्वास अनुप्रेक्षा का विकास तथा ध्यान के माध्यम से अभय का विकास किया जा सकता है।

❑

अध्याय—20

सुख की चाह नहीं, शांति की राह

- आखिर ऐसी क्या बात है सुख में कि प्रत्येक मनुष्य उसके ही पीछे पड़ा हुआहै?
- मन को ही पकड़ो; क्योंकि इंद्रियाँ न तो भोगी हैं, न कामी। वे तो विषयों को बाहर से अंदर ग्रहण करने का द्वार या माध्यम हैं।
- जब चेतना आवेग और संवेग के जाल से मुक्त होकर देखती है तो व्यक्ति का हृदय बदलने लगता है।
- आसक्ति और घृणा की वजह से आवेग एवं संवेग हावी हो जाते हैं।
- मन चेतना का विशिष्ट प्रतिनिधि है।

सुख की चाह नहीं, शांति की राह

सारा संसार मन को सुख देने के लिए प्रतिबद्ध है। इसमें कितनी सफलता मिल पाती है, यह एक अलग प्रश्न है और इस प्रश्न का उत्तर अवश्य ही रोचक होगा। आखिर ऐसी क्या बात है सुख में कि संसार का प्रत्येक मनुष्य उसके ही पीछे पड़ा हुआ है? कितनों को इसमें वांछित सफलता मिल पाई है? यह एक चिंतनीय प्रश्न है। क्या सचमुच सफलता मिल पाई है?

इसका उत्तर ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है। किसी को सफलता नहीं मिली, किसी को सुख नहीं मिला। यदि मिला होता तो यह प्रश्न उठाने की आवश्यकता ही नहीं थी। सूरज किस दिशा से उदय होता है? आग गरम होती है या ठंडी? कोई इन प्रश्नों के उत्तर नहीं ढूँढ़ता। इनके उत्तर सबको मालूम होते हैं।

मैं उसे ढूँढ़ रही हूँ, जो खो गया है

हुआ यों कि प्राचीन यूनान के एक नगर में सुबह—सुबह एक बुढ़िया हाथ में जलती हुई लालटेन लेकर सड़क पर कुछ खोज रही थी।

जैसाकि सभी देशों में होता है, कुछ बुद्धिमान लोगों को विस्मय हुआ और हम यह भी जानते हैं कि बुद्धिमान लोगों ने संसार को ठीक करने की जिम्मेदारी ले रखी है। जैसे ही कहीं कुछ होता है तो बुद्धिमान लोगों की टोली सबसे पहले वहाँ पहुँच जाती है देखने के लिए। फिर वे यूनान के बुद्धिमान थे, ईसा पूर्व चौथी सदी के। लिहाजा उन्होंने भी उस बुढ़िया से सवाल किया कि वह क्या ढूँढ़ रही है? क्योंकि जब तक उनको यह पता ही नहीं चलता कि वह ढूँढ़ क्या रही है, तब तक वे उस बेचारी बुढ़िया का अज्ञानांधकार दूर ही कैसे कर सकते थे? लेकिन उस बुढ़िया को दुनिया से क्या काम? वह उन बुद्धिमानों की बात न सुन पाई। जरूर बहुत व्यस्त रही होगी। जरूर बहुत बड़ी अभागी होगी, तभी तो इतना बड़ा मौका वह चूक गई। जीवन में बार—बार ऐसा अवसर आया नहीं करता। वह तो जैसे आई थी, वैसे ही चली भी गई—लालटेन की रोशनी में सड़क पर कुछ खोजती हुई। न जाने क्या खो गया था?

मृगतृष्णा है जीवन

हम भी अपने जीवन में कुछ खोज ही रहे हैं। बहुत गहरे में झाँककर देखने की कोशिश करें तो मालूम होगा कि

कुछ खोया तो है, पर क्या खोया है, यह पता नहीं है। हम खोज भी रहे हैं, खोज के भाव से भरे हुए हैं। हमेशा, हर क्षण यह लग भी रहा है कि वह कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु है। हर क्षण यह भी लग रहा है कि वह वस्तु अब मिली, अब मिली। विडंबना देखिए, यह पता भी नहीं है कि वह वस्तु क्या है? क्योंकि वह वस्तु अभी तक मिली ही नहीं है। किसी को भी नहीं मिली है। इससे सिद्ध होता है कि किसी को भी वह कभी मिलेगी भी नहीं। और जो मिलेगी नहीं, मजा यह है कि एक, दो, चार नहीं, पूरा संसार उसके पीछे पागल है। वह है शांति।

सत्य की खोज ही लक्ष्य है

संसार परिवर्तनशील है, फिर भी हमारा यह भाव तिरोहित नहीं होता है। हमें मिटकर यह मंच खाली करना पड़ता है—हम चाहें या न चाहें, हम तैयार हों या न हों। इसीलिए महावीर स्वामी ने कहा कि वृद्धावस्था का इंतजार न करके युवावस्था में ही श्रेय की प्राप्ति का मार्ग पकड़ना चाहिए—

''जरा जाव न पीलेइ, वाहि जाव न वड्ढइ,
जाविंदिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे।''

बुढ़ापा पीड़ित न करे, व्याधि जब तक न बढ़े, जब तक इंद्रियाँ क्षीण न हो जाएँ, तब तक धर्म का आचरण करो। प्रेय की प्राप्ति के लिए सारा संसार पहले ही मर—मिटकर मिट्टी बन चुका है। फिर से नए लोग आ गए और उनसे सारा संसार ही भर गया। लेकिन विडंबना देखो कि इन्हें भी पता नहीं है कि ये भी एक दिन मरेंगे और उस वस्तु के पीछे ये भी पड़ गए हैं। एक दिन ये भी मरेंगे। फिर नए लोग आ जाएँगे और वे भी इसी मूर्खता में लग जाएँगे। किसी को कुछ मिला नहीं है, लेकिन मजा यह है कि हर वक्त सबको यह लगता रहता है कि 'वह' वस्तु अब मिली, अब मिली। इसी तरह यह संसार चलता रहता है। यह सही मार्ग नहीं है। वृद्धावस्था की प्रतीक्षा मत करना। अभी से निकल पड़ना खोज़में।

जाल में मत फँसना

यह मत सोचना कि अभी काफी समय है। अभी तो मैं युवा हूँ। तुम युवा वय से जिस मादक संगीत को सुनकर वशीभूत हो रहे हो, उस संगीत को सुनकर त्रिपृष्ठ वासुदेव (भगवान् महावीर के पूर्वभव का जीव) के अंगरक्षक की भी तृप्ति नहीं हुई थी। हिरण भी स्वर—लहरियों के वशीभूत होकर खड़ा रह जाता है। शिकारी आराम से शिकार कर लेता है। नाग—नागिन भी बीन की स्वर—लहरियों में खोकर फँस जाते हैं और उन्हें पता नहीं चलता कि वे सींखचों के पीछे पहुँच चुके हैं।

एक तरफ तो महावीर, बुद्ध, आचार्य भिक्षु, आचार्य तुलसी द्वारा निर्दिष्ट निर्वाण महापथ हमें आमंत्रित कर रहा है। हम अपने आपको रोकना भी चाहें तो बरबस हमारा चित्त, हमारा मन हमारे हाथों से निकल जाता है। दूसरी ओर —इस संसार के राग—रंग, गीत—नृत्य, कला—संगीत और रास—रस का आकर्षण भी कम नहीं है। फिर, जब यह सब रूप की मदिरा और यौवन की तंद्रा में लपेटकर सामने प्रस्तुत किया जाता है तो हमारे रोकने पर भी हमारे प्राण हमारे हाथों से निकलकर संसार—मधु का पान करने के लिए पुष्प की पंखुड़ियों में बैठ जाते हैं। जो भी हो, सुगंध का रसिक भौंरा भी संध्या के समय कमल पुष्प में यही सोचकर कैदी होना स्वीकार कर लेता है कि सुबह होगी, कमल खिलेगा, मैं उड़कर बाहर चला जाऊँगा। हाथी द्वारा कमल नाल को अपना ग्रास बना लिये जाने पर भौंरे को कमल से बाहर निकलने की जरूरत ही नहीं पड़ती है और उसको कमल के साथ हमेशा रहने का अवसर प्राप्त हो जाता है, साथ जीने और मरने का भी।

यह वही कहानी है कि शिकारी आएगा, जाल बिछाएगा, तुम जाल में मत फँसना। लेकिन मछली मांस के टुकड़े को देखकर लालच का संवरण नहीं कर पाती है। गहरे गड्ढे में पड़ा भूसे से भरा हथिनी का शरीर जब कामासक्त हाथी की नजर में पड़ता है तो वह बरबस उस पर गिरकर जंजीरों के बंधन में हमेशा के लिए बँध जाता है।

मन को प्रशिक्षित करें

मन को ही पकड़ो; क्योंकि इंद्रियाँ न तो भोगी हैं, न कामी। वे तो विषयों को बाहर से अंदर ग्रहण करने का द्वार या माध्यम हैं। हम किसी भी स्थिति में बाहर की चीजों को अंदर प्रवेश करने से रोक नहीं सकते। सिर्फ यह निर्धारित कर सकते हैं कि प्रशस्त चीजें ही इंद्रिय—द्वारों से प्रवेश कर सकें, अप्रशस्त चीजें नहीं। लेकिन यह निर्धारित कौन करे? आखिर निर्णय लेनेवाला कौन है? वह कौन है, जो इन पाँच इंद्रियों के माध्यम से आनंद और मौज करता है? हमारा मन ही तो है। मन को ही प्रशिक्षित करनाहै।

मन की कार्यशैली को समझें

मन को प्रशिक्षित करने के लिए उसकी कार्यशैली को समझना जरूरी है। मन कोई इंद्रिय नहीं है, अवयव नहीं है, अंग नहीं है, मस्तिष्क से संचालित यंत्र भी नहीं है। मन चेतना का विशिष्ट प्रतिनिधि है। जब हम चिंतन, कल्पना या स्मृति करते हैं, जोकि मन के तीन मुख्य कार्य हैं, तो मन उपस्थित हो जाता है, अन्यथा यह लापता हो जाता है। स्मृति, चिंतन और कल्पना से ही मन चलता है; परंतु स्मृति, कल्पना और चिंतन से भिन्न है चेतना। चेतना की शक्ति से ही स्मृति, चिंतन और कल्पना की प्रक्रिया चल पाती है। इसलिए मन में आनेवाली कोई स्मृति या विचार या कल्पना से संघर्ष और विरोध करना सर्वथा अनुचित है। इन्हें मिटाने की कोशिश से मन विकृति को प्राप्त होता है। साथ ही निषेधात्मक विचारों का प्रवाह चालू होने लगता है।

मन को नियोजित करें

चिंतन के मामले में मुख्यत: आपके सामने दो प्रकार के रास्ते खुले हैं। एक बार सकारात्मक सोच प्रारंभ कर देंगे तो नकारात्मक सोच के लिए रास्ता अपने आप बंद हो जाएगा। व्यक्तिमात्र का यह कर्तव्य है कि वे स्वयं, परिवार, समाज व राष्ट्र के संबंध में हित, कल्याण व विकास का चिंतन करें।

चिंतन का तीसरा आयाम—प्रेक्षा

सोचने और विचारने का एक तीसरा आयाम भी सदैव खुला हुआ है, लेकिन कई कारणों से वह सबके लिए स्पष्ट नहीं है। उसकी अपेक्षित व्याख्या नहीं हुई है। उसका सम्यक् प्रचार—प्रसार नहीं हुआ है। वह है तटस्थ होना, ज्ञाता और दर्शक मात्र होकर जीना। मनुष्य की चिंतन शक्ति का यह उत्कर्षमय पहलू है, जिसे प्रेक्षा के सम्यक् अभ्यास तथा धारणा से हृदयंगम किया जा सकता है।

साथ ही हम यह भी याद रखें कि शरीर पर जो प्रभाव आज दिख रहा है, उसके कारण सिर्फ शरीर में ही उत्पन्न नहीं हो सकते थे, अगर मन में उसका समांतर भावारोपण नहीं होता रहा हो। यही बात सीखने की है कि हम मन में वैसे बीज रोपें ही क्यों, जिनके फल हमें नहीं चाहिए; जिनके फल विषमता, रुग्णता, अवसाद और ग्लानि के हों। हमें तो ऐसे विचारों का वपन मन की भूमिका में करना चाहिए, जिनके फल समानता, समरसता, एकता, अनुशासन, अभय, सहयोग और सेवाभाव के हों। जो बीज आज रोप दिए जाएँगे, कल हमारा मन ही नहीं, शरीर भी

उन्हीं भावों के रसायनों से भर जाएगा। हमारा भाव बदलेगा, जिससे विचार और फिर व्यवहार भी बदल जाएगा। यही प्रेक्षा का तात्पर्य है। तब दृष्टिकोण में न रहेगा राग, न रहेगा द्वेष। केवल शुद्ध वर्तमान की अनुभूति रहेगी, जो अमृत है।

वर्तमान का बोध ही बदलता है

लेकिन वर्तमान का बोध हमसे छूट कैसे जाता है? 5 से 10 वर्ष के बालकों की चेतना और रुचि इंद्रियों में अधिक होती है। चक्षु—इंद्रिय से देखना, श्रोत्र—इंद्रिय से सुनना, घ्राण—इंद्रिय से सूँघना, रसना—इंद्रिय से चखना और स्पर्श—इंद्रिय से छूना। पाँच इंद्रियाँ पाँच काम करती हैं और उनका ज्ञान धीरे—धीरे मस्तिष्क में जाकर स्मृतियाँ बन जाता है। बालपन में स्मृतियाँ बहुत कम होती हैं, इसलिए उसमें वर्तमान में होनेवाला अनुभव ज्वलंत, जाग्रत् और सजग होता है।

जैसे—जैसे स्मृतियाँ बढ़ती हैं, इंद्रियों का महत्त्व कम और मस्तिष्क महत्त्वपूर्ण बन जाता है। इंद्रियाँ जब आसक्ति या घृणा में पड़ती हैं तो उनका ध्येय कार्य गौण हो जाता है तथा आसक्ति और घृणा मुख्य बन जाते हैं। मस्तिष्क का कार्य अच्छे व बुरे कार्यों को छाँटना भी है; किंतु यह गौण हो जाता है।

आसक्ति और घृणा की वजह से आवेग व संवेग हावी हो जाते हैं और मस्तिष्क उन्हीं का गुलाम बनकर रह जाता है। इसलिए साधक जब प्रेक्षा करे तो अनुभव करे कि मुझे होनेवाली ये अनुभूतियाँ मुझ पर हावी नहीं हो सकतीं। ये मेरी समता और तटस्थता की स्थिति को छू भी नहीं सकतीं। साधक ध्यानावस्था में स्थित हुआ इन आवेगों एवं संवेगों को देखे और ये स्वत: डूब जाएँगी, अलग से कुछ करने की जरूरत नहीं है।

हृदय—परिवर्तन ही मौलिक सूत्र

जब चेतना आवेग और संवेग के जाल से मुक्त होकर देखती है तो व्यक्ति का हृदय बदलने लगता है। उसकी हायपोथैलेमस ग्रंथि के क्रिया—कलापों पर असर पड़ने से भावधारा में एक ऐसी निर्मलता का उदय होता है कि लगने लगता है कि अब व्यक्ति किसी से द्वेष व शत्रुता करे तो क्यों करे? क्या मिल जाएगा? राग क्यों करे? क्या प्राप्त हो जाएगा?

इस हृदय—परिवर्तन की डोर दृष्टिकोण—परिवर्तन के हाथों में है। साधक, जो अब तक दूसरों को दोष देता था, संसार में दोष—दृष्टि रखता था, वह छोड़ दे। आत्मानुभव करे कि मुझे सबसे मदद मिली है, सहायता प्राप्त हुई है। सबसे आनंद, सम्यक् मार्गदर्शन और ज्ञान का भंडार मिलता रहा है। बदले में मैं भी सबको अपना आनंद, सम्यक् मार्गदर्शन और ज्ञान बाँट रहा हूँ। इस तरह सभी मैत्री और प्रेम के धागे से बँधे हुए अपनी—अपनी चेतनाओं के कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमें पशुता से ऊपर उठाकर प्रेम और मैत्री सिखाई है।

दूसरों को दोष देना त्यागकर उनके प्रति आभारी होना ही दृष्टिकोण—परिवर्तन का सूत्र है। भगवान् महावीर ने कहा कि जब तक दृष्टिकोण सही नहीं होता है, वह व्यक्ति निर्वाण का अधिकारी नहीं हो सकता है। हजार तप करें, लाख बार संन्यास ग्रहण करें—बदलावों का संबंध तो दृष्टिकोण के बदलाव से ही है। न तो वेश इसमें काम आ सकता है, न आचार। जीवन तब ही बदलना शुरू होता है, जब विचार बदल जाएँ। और विचार का तात्पर्य है कि हम लोगों से वह चीज न माँगें, जो व्यर्थ है। उसकी आशा न करें, जो सांसारिक एवं भौतिक है। सांसारिक वस्तुएँ घर, कार, फार्महाउस और अन्य चीजें उद्देश्य तो पूरा कर सकती है, शांति नहीं दे सकतीं। शांति है चेतना के भीतर की अवस्था। वह वहाँ पर थी, वहाँ पर है और वहीं रहेगी। अंतर्मुखी बनो, यही शांति का मार्ग है।

सारांश के चार सूत्र

सम्यक् दर्शन, लक्ष्य के प्रति एकाग्रता, जागरूकता एवं समता तथा अनासक्ति—ये चार सूत्र हैं परिवर्तन को स्थायी बनाने के लिए। भय को छोड़ो; क्योंकि यही तनाव, विस्मृति व अवसाद का कारण है। आत्मा में अवस्थित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत आनंद में डुबकी लगाओ। अभय और मैत्री की अनुप्रेक्षा से आत्मा में अनुभूत शाश्वत सच्चाई को स्थायी बना सकते हैं।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि सुख मन की अभिवृत्ति है। मानव का इसके प्रति सहज ही आकर्षण रहता है। चेतना का विकास करके मन को शांति की राह की ओर अग्रसर किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए आवेगों तथा संवेगों पर नियंत्रण आवश्यक बन जाता है।

❑

अध्याय—21

रहस्य चिर युवा रहने का

- चिर युवा बनने के लिए वैद्यों एवं वैज्ञानिकों ने बहुत शोध किए हैं, किंतु अभी तक इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली है।
- मनुष्य का हर दिन उसके अनुभवों को परिष्कृत करता है।
- अतीत में खाई ठोकर हमें भविष्य के लिए सावधान बनाती है।
- सक्रियता ही जीवन है और निष्क्रियता मृत्यु।
- बुढ़ापा अनुभव का खजाना है। पक्का फल मीठा होता है। पूर्णता जीवन की सर्वोच्च अवस्था है।

रहस्य चिर युवा रहने का

रहस्य सदा कौतुक का विषय होता है। रहस्यों की खोज के लिए मनुष्य सदा उत्सुक रहता है। चिर युवा बनने के लिए वैद्यों एवं वैज्ञानिकों ने बहुत शोध किए हैं, किंतु अभी तक इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली है। संत, महात्माओं और ऋषियों तथा अध्यात्मविदों ने भी खूब विचार—विमर्श किया है; लेकिन वे भी कोई कारगर हल नहीं निकाल पाए। आज भी वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं ने हिम्मत नहीं हारी है। अब भी वे शोध में जुटे हुए हैं। शायद कोई समाधान निकल आए।

मनुष्य का मस्तिष्क प्रखर और तेजस्वी है। वह निरंतर नई—नई खोजें करता रहता है। अतीत में भी च्यवन ऋषि ने आँवले के रसायन से चिर यौवन की अवधारणा व्यक्त की थी। अनेक वैद्यों ने रस, धातु और औषधियों से युवकत्व की घोषणा की थी। आधुनिक वैज्ञानिकों ने शीतीकरण के प्रयोगों से कोशिकाओं को शीत स्थिति में जमाकर बाद में उष्णता प्रदान कर पुनर्जीवित करने की घटना की पुष्टि की है। वह स्पष्ट हुई या नहीं, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; किंतु अवचेतन द्वारा अपने आपको चिर युवा महसूस कर बेहतर जीवन जीने के अनेक उदाहरण उपलब्ध हुए हैं।

बुढ़ापा है मन का सोच

बुढ़ापा अनुभव का खजाना है। पक्का फल मीठा होता है। पूर्णता जीवन की सर्वोच्च अवस्था है। उससे निराश और हताश होने की आवश्यकता नहीं है, अपितु पूर्णता का अनुभव जीवन का सर्वश्रेष्ठ परिणाम है। जीवन का प्रारंभ है बचपन, यौवन जीवन का अल्हड़पन या बीच की अवस्था है, जबकि वृद्धत्व अनुभव का परिपाक है। बुढ़ापा कोई दु:खद स्थिति नहीं है, बल्कि परिवर्तन की सहज प्रक्रिया है। उसे प्रसन्नता से स्वीकार करना चाहिए। बुढ़ापे को निराश या हताश होकर रोते—बिलखते स्वीकार करना दुर्बलता है। वृद्धत्व अवश्यंभावी है और उससे बचा नहीं जा सकता।

मनुष्य का हर दिन उसके अनुभवों को परिष्कृत बनाता है। हालाँकि शरीर की गति अवस्था के साथ—साथ धीमी होती जाती है। कार्यक्षमता में भी ह्रस होने लगता है। चिंतन, मनन और कार्य—कुशलता भी पहले जैसी नहीं रह पाती; लेकिन अनुभवों में बहुत ज्यादा वृद्धि हो जाती है। निर्णय लेने की शक्ति परिपक्व हो जाती है। फिर हम बुढ़ापे को अभिशाप क्यों मानें? क्यों नहीं उसके अनुभवों को बटोरकर उससे लाभ उठाया जाए? अंतिम यात्रा के

लिए क्यों नहीं स्वयं को तैयार करें? यह अनंत की यात्रा है, जिसमें एक—एक कदम आगे बढ़ते हुए व्यक्ति मंजिल की ओर गतिशील होता है। अनुभवों की निपुणता लक्ष्य तक सकुशल पहुँचाने में बहुत सहायक होती है।

हमारी नकारात्मक सोच हमें निराशा में ले जाती है। अतीत की स्मृतियाँ विभ्रम में डालती हैं, जबकि अतीत कभी काम में नहीं आता है। अतीत तो व्यतीत हो चुका है। उसके अनुभव से भविष्य में सावधानी रखी जा सकती है। अतीत में खाई ठोकर हमें भविष्य के लिए सावधान बनाती है, आनेवाले खतरों से आगाह करती है। हमारे सारे अनुभव हमें एक नई सोच देते हैं, आगे बढ़ने की पे्ररणा देते हैं। यदि कोई अपने अनुभव और अपनी सोच से नवसृजन करना चाहे तो कर सकता है।

असहाय नहीं, सहयोगी बनें

उम्र के साथ व्यक्ति अपने आपको असहाय, अक्षम और अपमानित अनुभव करता है। हालाँकि एक उम्र के साथ व्यक्ति कार्य—मुक्त हो जाता है, परंतु इतना अक्षम नहीं होता जितना अपने आपको समझ लेता है। कार्य—मुक्त या सेवा—मुक्त होने का मतलब यह नहीं है कि आदमी बेकार हो गया है। शारीरिक क्षमता घट जाने से जरूरी नहीं कि आदमी स्वयं को मानसिक दृष्टि से कमजोर समझे। वृद्‍ध व्यक्ति में पारिवारिक सुरक्षा की भावना ज्यादा बढ़ जाती है। अपनी जिम्मेदारी को वह ईमानदार चौकीदार के रूप में निभाता है। यथासंभव घर के छोटे—बड़े कार्य में वह अपना सहयोग देता है। ज्यादा नहीं तो बच्चों की सार—सँभाल में स्वयं को संपृक्त कर वह अपने बेटों और बहुओं को निश्‍चिंत रखता है। परिवार से उसकी कोई ज्यादा माँग नहीं होती। समय पर भोजन, जरूरी वस्त्र और अस्वस्थता की स्थिति में दवा—पानी मात्र से वह संतुष्ट रहता है। उसका हरसंभव प्रयत्न रहता है कि परिवार के लिए वह इतना जरूर करे, जिससे परिवार उसे भार—स्वरूप न माने। जो पुत्र—पुत्रियाँ अपने माता—पिता को बोझ समझते हैं, उन्हें कालांतर में अपनी भूल का अहसास हो जाता है। माता—पिता, अभिभावक या बड़े—बुजुर्गों की जहाँ उपेक्षा होती है, उस परिवार को एक दिन त्रस्त होना पड़ता है। नैतिक दृष्टि से तो यह अनुचित है ही, सामाजिक दृष्टि से भी बुजुर्गों की उपेक्षा मान्य नहीं है। यह उपेक्षा वृत्ति हर दृष्टि से अमानवीय है। जिन्होंने अपनी संतान को पाल—पोसकर बड़ा किया, अच्छी शिक्षा दिलाई, आत्मनिर्भर बनाने में सहयोग किया, अपनी संपत्ति सौंपी, वृद्‍ध होने पर उनकी उपेक्षा स्वयं का अहित एवं क्रूरता का हेतु बनता है। माता—पिता तो शीतल छाँह की तरह होते हैं। वे अपनी संतान का हर दृष्टि से मंगल चाहते हैं, उसके हित के लिए हमेशा सचेत रहते हैं। फिर ऐसा कौन होगा, जो ऐसे शीतलता—प्रदायक तरुवर की छाँह से वंचित होना चाहेगा?

बुढ़ापे की परिभाषा को बदल दें

साधारणत: यही माना जाता है कि जो अवस्था को प्राप्त हो गया या जिसकी उम्र ज्यादा हो गई, वह बूढ़ा है और जो कम उम्र का है, वह युवा है। इस परिभाषा को बदल दिया जाना चाहिए। बुढ़ापे और यौवन का संबंध सक्रियता और निष्क्रियता से है। जो पूर्ण रूप से सक्रिय जीवन जी रहा है, वह साठ—सत्तर वर्ष का होकर भी युवा है और जो निष्क्रिय जीवन जी रहा है, वह पच्चीस वर्ष का होकर भी बूढ़ा है।

क्रियाशीलता का नाम ही यौवन या जवानी है। युवा में साहस होता है, जोखिम उठाने की क्षमता होती है, संकल्प दृढ़ होता है और उसमें कुछ कर गुजरने की ललक होती है। निष्क्रिय व्यक्ति अपने जीवन के दिन गिनता है और उसी में उसके जीवन की सांध्य वेला गहराती चली जाती है और जल्दी ही वह अपने जीवन का सफर पूरा कर लेता है। इस परिभाषा को हमेशा याद रखें—सक्रियता ही जीवन है और निष्क्रियता मृत्यु।

हम जीवन के दिन न गिनें। अपना हर दिन आज से शुरू करें। मन में हौसले की बुलंदी रहे। अभीष्ट लक्ष्य को सामने रखें और उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में कभी ढील न दें। हमारी यह प्रवृत्ति हमें हर समय सक्रिय रखेगी और हमारे उत्साह को कभी मंद नहीं होने देगी।

हमारा शरीर कोशिकाओं (Cell) से निर्मित है। जीवित कोशिकाएँ नई कोशिका का निर्माण करती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मृत कोशिका नई कोशिका के निर्माण में ईंट का काम करती है। ठीक यही बात बुजुर्गों के लिए भी कही जा सकती है। बड़े—बुजुर्ग अपने अनुभव के खजाने से अपनी नई पीढ़ी को समृद्ध बनाकर चले जाते हैं।

अरुणदत्त राय एक विदेशी कंपनी के वरिष्ठ अधिकारी थे। मंदी के दौर से जूझ रही उस कंपनी ने अरुण को सेवा—मुक्त कर दिया। उनकी अवस्था अभी 50—55 की थी, लेकिन अरुण निराश नहीं हुए। बैंक में जमा अपनी पूँजी को लेकर भारत आ गए। वे उच्च शिक्षित थे। उन्होंने मैनेजमेंट का डिप्लोमा किया था। भारत आते ही एक बड़ी कंपनी से उन्हें मैनेजर की पोस्ट का ऑफर मिला; लेकिन अरुण ने विनम्रता से मना कर दिया। अब तक वे शिक्षा और व्यापार के क्षेत्र में काफी अनुभव प्राप्त कर चुके थे। जीवन आराम से व्यतीत करने भर को उनके पास पर्याप्त धन था। उन्होंने सोचा, क्यों न अपनी शिक्षा और अपने अनुभवों का लाभ देश की भावी पीढ़ी को दूँ! उन्होंने एक शिक्षण संस्थान खोला। उसी के विकास में उन्होंने स्वयं को संपृक्त कर दिया। आज यह संस्थान अंतरराष्ट्रीय संस्थान के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुका है। यहाँ गुरुकुल जैसी व्यवस्था है और प्रतिवर्ष यह संस्थान देश को योग्य विद्यार्थी उपलब्ध कराता है। अरुणदत्त राय को इससे जो आत्मतोष प्राप्त होता है, वह लाखों डॉलर के वेतन से भी नहीं प्राप्त होता। इस संस्थान को वे अपने जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं।

मस्तिष्क कभी बूढ़ा नहीं होता

शरीर के अन्य अवयव अवस्था के साथ प्रभावित होते हैं; लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि मस्तिष्क कभी बूढ़ा नहीं होता। उसे जितना ज्यादा काम में लिया जाता है, वह उतना ही परिपक्व और सक्रिय होता है। सामान्यत: हमारे शरीर की कार्यक्षमता बहुत ज्यादा है। ध्यान, योग, आसन, प्राणायाम आदि से इस शरीर को अद्‌भुत और आश्चर्यजनक रूप से शक्तिशाली बनाया जा सकता है। इतिहास साक्षी है कि कई लोगों ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में ऐसे कई अद्‌भुत और आश्चर्यजनक काम किए कि लोग उन्हें अवतार की संज्ञा देने लगे। ध्यान और योग के द्वारा मस्तिष्क को कंप्यूटर से भी ज्यादा तीव्रगामी और तीक्ष्ण बनाया जा सकता है।

शरीर की कार्यक्षमता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमारा हृदय 250 वर्ष, किडनी 200 वर्ष, फेफड़े 150 वर्ष सक्रिय रूप से कार्य कर सकते हैं। इन मुख्य अवयवों को यदि व्यवस्थित रखा जाए और इनसे सही तरीके से काम लिया जाए तो ये और ज्यादा समय तक सक्रिय रह सकते हैं। इसी तरह मस्तिष्क का सुव्यवस्थित उपयोग किया जाए तो वह लंबे समय तक कार्य कर सकता है। इसकी देखभाल समुचित तरीके से की जानी चाहिए।

हमारे शरीर में इस धरती की सबसे बड़ी मशीनरी काम कर रही है। मशीन की कार्यक्षमता इस पर निर्भर है कि उसकी सार—सँभाल (Maintenance) कैसी हो रही है। शरीर के बारे में भी यही कहा जा सकता है। तकनीकी और वैज्ञानिक ढंग से निर्मित मशीन और हमारे शरीर की मशीन में सबसे बड़ा अंतर यही है कि दुनियावी मशीन बंद होने पर उसे फिर से नया पुरजा (Parts) लगाकर सक्रिय किया जा सकता है। हमारे शरीर की मशीन एक बार बंद हो गई तो दुनिया का कोई भी विशेषज्ञ इंजीनियर उसे फिर से चला नहीं सकता। बड़ी अद्‌भुत है यह मशीन। तमाम तरह की ज्यादती और अत्याचार झेलकर भी यह अपना काम सुचारु रूप से करती रहती है। हर तरह की

परिस्थितियों में स्वयं को ढाल लेती है और किसी तरह की शिकायत भी नहीं करती।

हर वस्तु की अपनी एक सीमा होती है। हमारे शरीर की भी एक सीमा है। जरूरत से ज्यादा उस पर दबाव न डाला जाए। उसकी मेंटीनेंस का हर तरह से ध्यान रखा जाए। अगर ऐसा होता है तो हमारा शरीर भी कभी किसी तरह की शिकायत का मौका नहीं देता है।

अहिंसा यात्रा के प्रवर्तक आचार्यश्री महाप्रज्ञ 90 वर्ष के थे, किंतु उनका मस्तिष्क इतना उर्वर और प्रखर था कि उम्र का उनपर कोई विशेष असर नहीं आया। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने मस्तिष्क को सदैव सक्रिय रखा। नए ज्ञान, विज्ञान की खोज और शोध में अपने मस्तिष्क को हमेशा नियोजित रखा। अध्यात्म और साहित्य जगत् की इतनी लंबी सेवा का रहस्य है मस्तिष्क की सक्रियता। सक्रियता से ही उनके शरीर ने स्वयं को बुढ़ापे से दूर रखा था। बाल्यकाल और युवावस्था में उन्होंने जो कुछ और जितना भी पढ़ा, वह आश्चर्यजनक ढंग से उन्हें मृत्युपर्यंत तक याद था। हजारों श्लोक, आगम की सूक्तियाँ, व्याकरण सूत्र आदि हर समय उनके मुख पर रहते थे। यह मस्तिष्क की निरंतर सक्रियता का ही परिणाम है। चेतना के रूपांतरण का वे केवल पाठ ही नहीं पढ़ते, अपनी चेतना को उन्होंने पूर्ण रूप से रूपांतरित भी कर लिया था। चेतना में अगर युवकत्व की ऊर्जा भरी है तो मस्तिष्क कभी बूढ़ा हो ही नहीं सकता। अवस्था ऐसे प्रज्ञावानों को कभी बाधित और प्रभावित नहीं कर पाती। इसलिए किसी को अगर दीर्घकाल तक स्वस्थ और सक्रिय जीवन जीना है तो उसे अपनी चेतना और भावों को सदैव सक्रिय एवं निर्मल बनाए रखना होगा।

अंत में, चिर युवा बने रहने के लिए व्यक्ति के जीवन में सक्रियता तथा सकारात्मक सोच आवश्यक है। वृद्धावस्था भी अनुभव का अक्षय भंडार होती है। अतीत के अनुभवों से सबक लेकर भी व्यक्ति जीवन में पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकता है।

❑

अध्याय—22

प्राण और प्राण ऊर्जा चिकित्सा

- प्राण को सामान्यत: ऊर्जा के रूप में पहचाना जाता है।
- साधक व्यक्ति ब्रह्मांड से ऊर्जा को संगृहीत कर अपनी प्राण ऊर्जा को बढ़ा सकता है।
- दीर्घ और मंद श्वास से प्राण संगृहीत ही नहीं, बल्कि सक्रिय भी हो जाता है।
- चंचलता और तनाव से प्राण शक्ति का व्यय अधिक होता है।
- स्वस्थ और प्राणवान् व्यक्तित्व से प्रस्फुटित होनेवाली प्राण ऊर्जा दूसरों को ताजगी एवं ऊर्जा प्रदान करती है।

प्राण और प्राण ऊर्जा चिकित्सा

प्राण को सामान्यत: ऊर्जा के रूप में पहचाना जाता है। प्राण ऊर्जा के दो रूप हैं—एक भौतिक ऊर्जा, जो निर्जीव पदार्थ से निकलती है; दूसरा चैतन्य की ऊर्जा, जिसे 'जैव ऊर्जा' कहा जाता है। पदार्थ से उत्पन्न ऊर्जा से सभी परिचित हैं, किंतु जैव ऊर्जा से कम परिचित हैं। प्राण ऊर्जा का अनुभव करने के लिए कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। दोनों हाथों की हथेलियों को आकाश की ओर सामने फैलाएँ और भावना करें—ब्रह्मांड से ऊर्जा हाथों की उँगलियों में प्रवेश कर रही है। फिर ऊर्जा का अनुभव करें। दोनों हथेलियों को परस्पर आमने—सामने करें। एक उत्तरी ध्रुव है, दूसरा दक्षिण ध्रुव। दोनों हाथ एक—दूसरे को चुंबक की तरह खींच रहे हैं। दोनों के बीच के खिंचाव का कारण प्राण ऊर्जा है। दोनों हथेलियाँ एक—दूसरे से चिपक गई हैं। दबाव से उसे दूर कर रहे हैं। फिर नजदीक करें। दोनों हाथों में शक्ति आ गई है। दोनों हाथों को सिर पर रखें, भावना करें—'यह ऊर्जा मस्तिष्क में जाए। मैं प्रेक्षाध्यानी, जीवन—विज्ञानी बनूँ।'

मानव शरीर में ऊर्जा का प्रवाह

मानव का शरीर ऊपर से हाड़—मांस का पुतला दिखाई देता है। जैन पारिभाषिक शब्द में इसे 'औदारिक शरीर' कहा जाता है। मानव का शरीर उदार है। इस शरीर से ही साधना द्वारा सिद्धि/निर्वाण की उपलब्धि होती है। दूसरा ऐसा कोई शरीर नहीं है, जिससे निर्वाण उपलब्ध किया जा सके।

देवताओं का शरीर दिव्य होता है। वे विकुवर्णा शक्ति से विभिन्न रूपों का निर्माण कर सकते हैं; किंतु त्याग व संयम की साधना नहीं कर सकते। भगवान् महावीर के जीवन का प्रसंग है। उनका ऋजु बालिका नदी के उत्तरी किनारे जृंभिका ग्राम के बाहर श्यामक गृहपति के खेत में वैशाख शुक्ला दशमी को दो दिन का निर्जल उपवास था। गौदोहिका आसन था। नतशीश धर्मध्यान में लीन थे। शुक्लध्यान की अंतरिका, एकत्व विर्तकध्यान की स्थिति में मोहकर्म विलीन हुआ। ज्ञानावरणीय आदि कर्म विलीन हुए, कैवल्य ज्ञान उत्पन्न हुआ।

कैवल्य ज्ञान के उत्सव में शामिल होने के लिए देवताओं के विमान उतरने लगे। दिव्य शक्तियाँ समवसरण में एकत्र होने लगीं। भगवान् महावीर ने दिव्य देशना (प्रवचन) दी। देशना सुननेवाले समस्त देव ही थे। सबने भगवान् के प्रवचन की प्रशंसा की, किंतु किसी ने व्रत को, त्याग को स्वीकार नहीं किया; क्योंकि देव अति विलासी होते हैं, जिस तरह अति संपन्न व्यक्ति के लिए त्याग और संयम कठिन होता है। देवतागण मनुष्यों से कोटि गुणा अधिक विलासी होते हैं। किसी ने संयम, संन्यास को स्वीकार नहीं किया। इसलिए भगवान् की प्रथम देशना निष्फल गई।

यह आश्चर्य हुआ। तीर्थंकर भगवान् की कोई देशना व्रत या महाव्रत के स्वीकृति के बिना पूर्ण नहीं होती है। व्रत बिना ऊर्जाशील व्यक्ति के स्वीकार नहीं होते हैं।

प्राण ऊर्जा से चिकित्सा

प्राण ऊर्जा को एक—दूसरे को दिया भी जा सकता है। व्यक्ति अपनी ऊर्जा को शरीर में संरक्षित कर सकता है, फिर संकल्प के द्वारा दूसरों को प्रेषित कर सकता है। साधक व्यक्ति ब्रह्मांड से ऊर्जा को संग्रहीत कर अपनी ऊर्जा को बढ़ा सकता है। उसके लिए साधक अपने आपको ग्रहणशील बनाकर ब्रह्मांड में फैली ऊर्जा के प्रवाह को अपनी ओर उन्मुख कर सकता है, जिससे साधक ऊर्जामय हो सकता है। उस ऊर्जा का उपयोग भावना से करें। उससे सहज चिकित्सा हो जाएगी। केवल भावना से आपकी ऊर्जा रोगी की ओर प्रवाहित होने लगती है, जिससे व्यक्ति स्वस्थ और शांत होने लगेगा।

प्राण का कैसे करें संरक्षण?

प्राण पूरे ब्रह्मांड में फैला हुआ है। प्राण का संग्रहण करना होता है। प्राण संग्रहण का सरल तरीका है—श्वास—प्रश्वास की क्रिया को सम्यक् रूप से करना। श्वास ग्रहण करते समय प्राणवायु को भीतर ले जाते हैं। फेफड़ों के कोष्ठकों में अशुद्ध वायु बाहर प्रश्वास से भेजते हैं और प्राणवायु को ग्रहण कर रक्त में संप्रेषित करते हैं। प्राण—ग्रहण और संरक्षण के लिए पूरक, रेचक व कुंभक की क्रिया आवश्यक है। कुंभक के भी दो प्रकार हैं—अंत:कुंभक और बाह्य कुंभक। अंत:कुंभक में प्राण को भीतर रोका जाता है, जिससे प्राण अच्छी तरह से एक—एक कोष्ठक में समा जाए। रेचन कर बाह्य कुंभक में जो अवशेष प्राण भीतर बचा है, उसका अच्छी तरह से उपयोग हो जाए और नए प्राण की भरपूर माँग संपूर्ण शरीर से हो, ताकि अगला श्वास और अधिक दीर्घ व गहरा हो।

दीर्घ और मंद श्वास से प्राण संगृहीत ही नहीं होता, बल्कि सक्रिय भी हो जाता है। तनुपटीय श्वास—प्रश्वास मन को शांति और मांसपेशियों को विश्राम देता है। दीर्घ—श्वास रक्त प्रवाह में एंडॉरफिन रसायन छोड़ता है। एंडॉरफिन शक्तिशाली मस्तिष्कीय रसायन है, जो तंत्रों को नियंत्रित करता है, वेदना सहन करने की शक्ति प्रदान करता है। श्वास के दीर्घ और मंद करने की इस प्रक्रिया से तनाव को दूर करने की क्षमता पैदा होती है। मंद और दीर्घ श्वास से आवेश संतुलित होता है, स्मृति का विकास होता है, व्यवहार सहज होने लगता है। प्राण का अधिक व्यय आवेश और आवेग में होता है। दीर्घ श्वास और मंद श्वास से सहज ही शक्ति का संरक्षण और संतुलन पैदा हो जाता है।

कायोत्सर्ग तथा शवासन से भी शक्ति का संरक्षण होता है। प्राण—शक्ति का व्यय चंचलता और तनाव में अधिक होता है। कायोत्सर्ग से तनाव व चंचलता दूर होती है।

प्राणवान् व्यक्तित्व का प्रभाव

स्वस्थ और प्राणवान् व्यक्ति जहाँ से गुजरता है, उधर सहज प्राण का संचार हो जाता है, जिस तरह से हरियाली से परिपूर्ण बगीचे से गुजरने पर ताजगी महसूस होती है। वहाँ बैठने और खड़े रहने से अच्छा अनुभव होता है। इसी प्रकार स्वस्थ और प्राणवान् व्यक्तित्व से प्रस्फुटित होनेवाली प्राण ऊर्जा दूसरों को ताजगी और ऊर्जा प्रदान करती है। प्राण ऊर्जा से संपन्न व्यक्ति यदि रोगियों के बीच चला जाए तो उनको सहज शक्ति और शांति मिलती है। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि ऊर्जावान् व्यक्ति को ब्रह्मांड से ऊर्जा ग्रहण कर लेनी चाहिए, जिससे आप शक्ति से, ऊर्जा

से रिक्त नहीं हो जाएँ।

ऊर्जावान् व्यक्ति के साथ बैठने मात्र से शांति का अहसास होता है। सद्गुरु के परिपार्श्व में भी ऊर्जा का अनुभव होता है।

एक विचित्र प्रयोग

स्वामी सत्यानंदजी के गुरुभाई नादब्रह्मानंदजी के नाद के दावे की जाँच के लिए मेनिजर फाउंडेशन, यू.एस.ए. में एक प्रयोग किया गया। स्वामीजी को काँच के कमरे में, जिसमें बाहर से वायु का प्रवेश न हो सके, बैठाया गया। पूरे शरीर पर मोम का लेप किया गया। मस्तक पर एक सिक्का रखा गया। पास के काँच के केबिन में जलती हुई मोमबत्ती रखी गई। तीसरे काँच के केबिन में एक बंदर को रखा गया। श्री नादब्रह्मानंदजी ने श्वास को रोका और तबला बजाने में लीन हो गए। उस समय नाक—कान रुई डालकर बंद कर दिए गए। 3 मिनट बाद मोमबत्ती गुल हो गई। 5 मिनट बाद बंदर बेहोश हो गया, किंतु वे 40 मिनट से अधिक समय तक श्वास को रोके हुए तबला बजाते रहे। पूरा शरीर पसीने से तर—बतर हो गया। मस्तक पर रखा सिक्का फुदक—फुदककर उछल रहा था। शरीर पर माइक्रोफोन रखा हुआ था, जिससे जल—प्रपात की ध्वनि हो रही थी। वह ध्वनि प्राण के हलचल की थी। श्वास—प्रश्वास नहीं होने पर आदमी मरता नहीं, बल्कि जब तक प्राण सक्रिय रहता है, व्यक्ति जीवित रहता है। प्राण रिक्त होने पर ही मनुष्य की मृत्यु होती है। श्वास से प्राण बनता है, लेकिन श्वास और प्राण एक नहीं हैं।

प्राण जीवनी शक्ति है। प्राण जब इंद्रिय, मन, वचन और काया के साथ जुड़ते हैं, तभी वे सक्रिय होते हैं। ऐसे ही श्वासोच्छ्वास के साथ जुड़ते हैं, तब श्वास—प्रश्वास की क्रिया होती है। इन सब में महत्त्वपूर्ण जीवनपर्यंत साथ रहनेवाला आयुष्य प्राण है। वह है, तब तक जीवन है, उसके समाप्त होते ही जीवन समाप्त हो जाता है। जैन तत्त्व विद्या में दस प्राणों का वर्णन किया गया है, जो निम्नानुसार हैं—

1. श्रोत्रेंद्रिय प्राण
2. चक्षुरिंद्रिय प्राण
3. घ्राणेंद्रिय प्राण
4. रसनेंद्रिय प्राण
5. स्पर्शेंद्रिय प्राण
6. मनोबल प्राण
7. वचन बल प्राण
8. कायबल प्राण
9. श्वासोच्छ्वास प्राण
10. आयुष्य प्राण

पाँचों इंद्रियों को सक्रिय रखनेवाले श्रोत्रेंद्रिय आदि प्राण हैं। मन, वचन और काया को सक्रिय रखनेवाले मनोबल प्राण, वचन बल प्राण और कायबल प्राण हैं। श्वास और उच्छ्वास को सक्रिय रखनेवाले श्वासोच्छ्वास प्राण हैं। श्वास वर्गणाएँ एक विशेष परमाणु हैं, जिससे हम प्राणवायु को ग्रहण करते हैं। यह जैन पारिभाषिक शब्दावली है। आयुष्य प्राण का बंधन जन्म से पहले पिछले जीवन में होता है, जो जन्म के समय से मृत्युपर्यंत इस शरीर के साथ रहता है।

प्राणायाम में प्राण का विवरण है। हम प्राणवायु (ऑक्सीजन) को फेफड़ों में ग्रहण करते हैं और अशुद्ध वायु

(कार्बन डाइऑक्साइड) को बाहर निकालते हैं। प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषा का अंतर है; किंतु सच्चाई यही है कि हम श्वास के साथ प्राणवायु के पुद्‌गलों को ग्रहण करते हैं और श्वास छोड़ते समय अशुद्ध वायु बाहर छोड़ते हैं। वस्तुत: हमारा जीवन प्राणवायु पर ही आधारित है, चाहे उसे श्वासोच्छ्‌वास वर्गणा कहें या प्राणवायु।

प्राणायाम का अत्यंत महत्त्व

प्राणायाम में रेचन और पूरक ही नहीं, अपितु कुंभक का भी महत्त्व है। 'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वास योर्गतिर्विच्छेद: प्राणायाम', महर्षि पतंजलि द्‌वारा दी गई प्राणायाम की इस परिभाषा का अर्थ है—श्वास—प्रश्वास की गति के विच्छेद अर्थात् कुंभक करने से तथा अचानक श्वास के रुकने से जो स्थिति बनती है, वह प्राणायाम है।

प्राणायाम अत्यंत शक्तिशाली प्रक्रिया है। 'हठयोग प्रदीपिका' के श्लोक 2.37 में कहा गया है—'प्राणायाम से दोष दूर होते हैं, इसलिए प्रचलित सभी योग पद्‌धतियों में प्राणायाम को सम्मानजनक स्थान प्राप्त है। प्राणायाम के आठ प्रकार हैं। उन्हें व्यवस्थित कर प्राण ऊर्जा का विकास किया जा सकता है और प्राण ऊर्जा के माध्यम से भीतरी दोषों को दूर किया जा सकता है। प्राणायाम से शरीर, मन और आत्मा निर्मल बनती हैं।' इसलिए सभी ने इसकी महिमा गाई है।

सारांश में यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति में छिपी ऊर्जा को भी प्राण कहा जा सकता है। प्राण ऊर्जा के विकास में प्राणायाम की महती भूमिका होती है। इससे मन की चंचलता तथा संवेगों को नियंत्रित किया जा सकता है।

❑

अध्याय—23

प्राणायाम : शक्ति का अक्षय भंडार

- प्राण जीवनी शक्ति है।
- प्राण ऐसा शक्तिशाली तंत्र है, जिसके बिना कोई भी अंग सक्रिय और क्रियाशील नहीं हो सकता है।
- श्वसन—तंत्र स्वत: एवं संकल्प द्वारा नियंत्रित होता है।
- श्वास—प्रश्वास में पाँच तत्त्व गतिशील होते हैं।
- स्वर को जानकर ही तत्त्वों की पहचान हो सकती है।
- स्वरोदय की विचित्रता है कि वह अनुशासित ढंग से कार्य करता है।
- श्वास—प्रश्वास गति को दीर्घ कर जीवन को दीर्घ करें।

प्राणायाम : शक्ति का अक्षय भंडार

प्राणायाम शक्ति का अक्षय भंडार है। प्राण ही जीवनी शक्ति है। प्राण से ही समस्त प्राणी प्राणवान् बनते हैं, नहीं तो निर्जीव हो जाते हैं। प्राण जड़ और चेतना के मध्य सेतु है। यह सेतु नहीं होता तो न जड़ क्रियाशील होता और न चेतना अपना कोई कार्य कर पाती। प्राण ऐसा शक्तिशाली तंत्र है, जिसके बिना कोई भी क्रिया और अंग सक्रिय नहीं हो सकते। प्राण का जीवन में प्रथम स्थान होने से हमें प्राण और प्राणायाम को अच्छी तरह समझकर ही उसका सम्यक् उपयोग करना चाहिए।

श्वास लेना और छोड़ना प्राणायाम है। प्राणायाम को सामान्यत: ऐसा ही समझा जाता है। श्वास की गति को उच्छेद कर लेना ही प्राणायाम नहीं है। यह प्राणायाम की स्थूल प्रक्रिया की ओर मात्र संकेत है। प्राणायाम के कार्य को समझने के लिए प्राणायाम के सूक्ष्म तंत्रों एवं उसकी लयबद्ध प्रक्रिया पर ध्यान देना होगा। मानव शरीर रचना की यह एक विचित्रता है कि यह स्व—नियंत्रित है और साथ ही मस्तिष्क का मेडुला भाग श्वसन क्रिया को प्रभावित करता है। इसी तरह ईड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का प्राणपथ भी हमारी जीवन—शृंखला के आधारभूत रहस्य हैं।

श्वसन स्वत: एवं संकल्प के द्वारा नियंत्रित होता है। श्वसन में केवल श्वास लेना और छोड़ना दिखाई देता है। यह स्थूल क्रिया है। श्वास में स्वर का उदय होना एवं अस्त होना चलता है। उसका प्रारंभ होना, बदलना ऐसे क्रिया—कलाप हैं, जिसे संपादित करना टेढ़ी खीर है, साथ ही यह इतना सूक्ष्म ज्ञान है कि बायाँ—दायाँ एवं मध्यम में प्रवाह की तरह बहनेवाला और प्रत्येक श्वास—प्रश्वास में पाँच तत्त्व भी साथ में गतिशील हैं। यह मात्र कल्पना नहीं है। प्राचीन ऋषियों ने स्वयं के शरीर की प्रयोगशाला में प्रयोग कर सिद्धांतों की घोषणा की। यह बात अलग है कि हम इस अध्यात्म विद्या की सुरक्षा और विकास नहीं कर पाए। अब भी समय है कि उस स्वरोदय विज्ञान का विश्लेषण एवं शिक्षण—प्रशिक्षण की व्यवस्था कर अति प्राचीन विद्या को पुन: जीवित किया जा सके। यह प्राचीन विद्या की अपूर्व सेवा हो सकती है।

श्वसन में अनेक गैसों के साथ प्राणवायु भी भीतर फेफड़ों में जाती है। वह फेफड़ों से रक्त के साथ मिलकर पूरे शरीर में संचार करती है। दूषित वायु पुन: बाहर आ जाती है, यह सामान्य व्यवस्था और नियम है।

कृष्ण पक्ष : 01—02—03

स्वर : चंद्र स्वर
शुक्ल पक्ष : 01—02—03
स्वर : सूर्य स्वर

कृष्ण पक्ष : 04—05—06
स्वर : सूर्य स्वर
शुक्ल पक्ष : 04—05—06
स्वर : चंद्र स्वर

कृष्ण पक्ष : 07—08—09
स्वर : चंद्र स्वर
शुक्ल पक्ष : 07—08—09
स्वर : सूर्य स्वर

कृष्ण पक्ष : 10—11—12
स्वर : सूर्य स्वर
शुक्ल पक्ष : 10—11—12
स्वर : चंद्र स्वर

कृष्ण पक्ष : 13—14—15
स्वर : चंद्र स्वर
शुक्ल पक्ष : 13—14—15
स्वर : सूर्य स्वर

श्वास—प्रश्वास दीर्घ : जीवन दीर्घ

प्रत्येक व्यक्ति दीर्घ जीवन चाहता है। दीर्घ जीवन का नुस्खा स्वयं उसके पास है। हमारा जीवन श्वासों—नि:श्वासों पर आधारित है। श्वास की मात्रा अधिक व्यय होती है, तो जीवन शीघ्र पूरा होता है। श्वास की मात्रा अल्प खर्च होती है तो जीवन दीर्घ हो जाता है। श्वास की गति मंद और लयबद्ध होती है तो जीवन दीर्घ होता है। सामान्यत: मनुष्य 2 सेकंड में श्वास लेता है, 2 सेकंड में छोड़ता है। 1 मिनट में 15 श्वास—प्रश्वास हुए। इस तरह वह एक दिन में 21,600 श्वास—प्रश्वास की क्रिया कर लेता है।

दूसरा एक सामान्य नियम है कि श्वास की गति बाहर जाते समय प्राय: 12 आँगुल तथा अंदर आते समय 10 आँगुल होती है। श्वास भीतर जाकर बाहर आने में 4 सेकंड लग जाते हैं। यदि श्वास के अंदर से बाहर आने के समय को 4 सेकंड की बजाय 5 या 6 कर देते हैं तो हमारा जीवन दीर्घ हो जाएगा। श्वास की गति मंद अथवा तीव्र होने के कई कारण हैं—

1. व्यक्ति गीत—संगीत गा रहा है, उसकी गति 16 आँगुल हो जाती है।
2. खाना खाते समय श्वास की गति 20 आँगुल हो जाती है।
3. चलते समय श्वास की गति 24 आँगुल हो जाती है।
4. सोते समय श्वास की गति 30 आँगुल हो जाती है।

5. परिश्रम करते समय श्वास की गति 36 आँगुल से अधिक हो जाती है।

श्वास की इस स्वाभाविक गति को घटाकर 11 आँगुल तक आने पर प्राण स्थिर होता है। श्वास की इस गति को 10 आँगुल ले आने पर आनंद की प्राप्ति होती है। श्वास की गति को 9 आँगुल ले आने पर कवित्व प्राप्त होता है। श्वास की गति को 8 आँगुल ले आने पर वाक् सिद्धि प्राप्त होती है। श्वास की इस गति को 7 आँगुल ले आने पर दूरदृष्टि की प्राप्ति होती है। श्वास की इस गति को 6 अँगुल ले आने पर हलकापन अनुभव होता है। श्वास की इस गति को 5—4—3—2 आँगुल ले आने पर नाना सिद्धियाँ व विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। श्वास की इस गति को 1 आँगुल ले आने पर अदृश्य शक्ति प्राप्ति होती है। स्वर ज्योतिष के विद्वानों का ऐसा कथन है।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही माना जा सकता है कि प्राण जीवन—शक्ति है, जिसका प्राणायाम के माध्यम से विकास संभव है। इसके लिए भी श्वास—प्रक्रिया का उचित प्रशिक्षण आवश्यक है।

❑

अध्याय—24

स्मृति विकास के प्रयोग

- स्मृति का तात्पर्य है—ग्रहण किए हुए ज्ञान को स्मृति प्रकोष्ठों में सुरक्षित रखना और पुन: स्मरण कर व्यक्त करना।
- स्मृति का अर्थ है—वर्तमान में उन क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करना, जिनको हमने पूर्व में सीखा था।
- जब याद की हुई वार्त्ता या घटना स्मृति में नहीं आती, तब लगता है कि स्मृति कमजोर हो गई है।
- दृढ़ संकल्प और विधायक चिंतन स्मृति विकास में सहायक होता है।
- अध्ययन एवं अध्यापन में आनेवाली एकाग्रता स्मृति का विकास करती है।

स्मृति विकास के प्रयोग

क्या है स्मृति?

चेतना का विशिष्ट गुण है ज्ञान। ज्ञान से वह जानता है, अनुभव करता है। अनुभव करना, जानना ही उसकी विशिष्टता है। ज्ञान के पाँच प्रकार हैं—मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन:पर्यव ज्ञान, कैवल्यज्ञान।

मति ज्ञान एवं श्रुत ज्ञान

मति ज्ञान से व्यक्ति ज्ञान को ग्रहण करता है, मनन करता है, अपने स्मृति प्रकोष्ठों में भंडारण करता है, चिंतन करता है, कल्पना के द्वारा तत्सम ज्ञान की धाराओं को विकसित करता है; संगृहीत किए गए ज्ञान को तब दूसरों को समझाने की स्थिति में आ जाता है, अर्थात् दूसरों को वह ज्ञान प्रदान करता है। अभिव्यक्ति की इस क्षमता और अभिव्यक्त होनेवाले ज्ञान को 'श्रुत ज्ञान' कहा गया है। सामान्यत: जिसके मन होता है, उसमें मति और श्रुत ज्ञान होता है। सम्यक्त्वी के ज्ञान को मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान कहा गया है। यहाँ 'अज्ञान', 'ज्ञान नहीं' के अर्थ में नहीं है, अपितु कुत्सित ज्ञान मिथ्यात्व के कारण से है, उसे अज्ञान कहा गया है। साफ पात्र को सम्यक्त्वी, मलिन पात्र को मिथ्यात्वी कहा गया है। जबकि ज्ञान सही होते हुए भी मिथ्यात्वी व्यक्ति की पात्रता के कारण से ऐसा माना जाता है। स्मृति का तात्पर्य है, ग्रहण किए हुए ज्ञान को स्मृति प्रकोष्ठों में सुरक्षित रखना और पुन: स्मरण कर व्यक्त करना।

स्मृति मस्तिष्कीय प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति सूचनाओं व संकल्पों को सुरक्षित रखता है। जब किसी घटना या विषय को स्मृति में संगृहीत करते हैं और आवश्यकता के समय प्रत्याह्वान करते हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हिनगार्ड और एटकिंसन ने स्मृति के संबंध में अभिव्यक्ति देते हुए बताया, ''स्मृति का अर्थ होता है वर्तमान में उन क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को प्रदर्शित करना, जिनको हमने पूर्व में सीखा था।'' स्मृति केवल मनुष्यों में ही नहीं, अन्य प्राणियों में भी होती है। गाय जंगल में जाती है, पहाड़ियों की पगडंडी से जाती है, वापस उसी मार्ग से लौट आती है। दूसरे दिन भी पुन: घास चरने उस ओर गतिशील हो जाती है, जहाँ उसे पहले अच्छा चरागाह मिला था। पानी पीने जिस तालाब, झरने या घाट की ओर जाती है, दूसरी और तीसरी बार प्यास लगने पर वहीं जाती है। सायंकालीन गाएँ अपने घर की ओर चली जाती हैं। हजारों मील दूर से आनेवाले प्रवासी पक्षी समय पर आते हैं और समय पूरा होने पर उसी मार्ग से अपने गंतव्य की ओर लौट जाते हैं।

अवधि ज्ञान

अवधि ज्ञान अतींद्रिय क्षमतावाला है। मन:पर्यव ज्ञान मन की वर्गणाओं को साक्षात् कर सकता है। दूसरे के मन में क्या चल रहा है, मन:पर्यव ज्ञान होने से उसे व्यक्त किया जा सकता है। कैवल्यज्ञान संपूर्ण ज्ञान है। कैवल्यज्ञान के ज्ञाता को 'सर्वज्ञ' भी कहा जाता है। त्रिकालदर्शी—अतीत, वर्तमान और भविष्य का साक्षात् कर सकता है।

स्मृति के प्रकार

स्वरूप की दृष्टि से स्मृति के तीन भेद किए जा सकते हैं—

1. **सांवेदिक स्मृति (Sensory Memory)—** संवेदन के द्वारा जो स्मृति में संरक्षित किया जाता है, उसे सांवेदिक स्मृति कहते हैं। हमारी पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ प्रतिक्षण कुछ—न—कुछ संवेदन ग्रहण करती रहती हैं; जैसे—भोजन की खुशबू, किसी वस्तु का स्वाद, किसी व्यक्ति का मिलन—बिछुड़न आदि हमारे मनोमस्तिष्क में अंकित व संरक्षित हो जाता है। विशेष प्रकार की घटना, जो स्वयं की प्रियता—अप्रियता से जुड़ी होती है, वह मस्तिष्क में सुरक्षित हो जाती है। वह स्वल्पकाल के पश्चात् नष्ट भी हो जाती है या स्मृति—पटल पर अंकित भी रह सकती है।

2. **अल्पकालिक स्मृति (Short term Memory)—** दैनिक क्रिया—कलाप, चर्चा, वार्त्ता एवं अन्य सूचनाएँ, जो वर्तमान क्रिया—कलापों से संबंधित होते हैं, कार्य पूरा होते ही विस्मृति के गर्त में चली जाती है।

3. **दीर्घकालिक स्मृति (Long term Memory)—** जीवन में कुछ घटनाएँ सुखद और दु:खद होती हैं। वे मस्तिष्क पटल पर इस तरह अंकित हो जाती हैं कि भुलाए भूल नहीं पाते हैं। वे दीर्घ समय तक संरक्षित व सुरक्षित रहती हैं। उसे ही दीर्घकालिक स्मृति कहा जाता है।

स्मृति की प्रक्रिया

स्मरण—शक्ति का एक प्रकार होता है। उसे कैसे और किस प्रकार मस्तिष्क पटल में डाला जाए, जिससे उसे संरक्षित और पुन: प्रतिस्थापित किया जा सके। मनोविज्ञान की भाषा में उसे चार चरणों में प्रस्तुत किया है—स्थिरीकरण, धारणा, पुन:स्मरण, प्रत्यभिज्ञा।

1. **स्थिरीकरण (Fixation)—** किसी भाषा, घटना को जब हम सीखते हैं, वे हमारे मस्तिष्क के कोष्ठकों में अपने ढंग से अंकित हो जाती हैं। वे स्मृति को स्थिर रखती हैं।

2. **धारणा (Retention)—** मस्तिष्क उन ग्रहण किए गए संकेतों को धारण कर लेता है। मस्तिष्क द्वारा वे संकेत स्मृति—पटल में भंडारण हो जाते हैं।

3. **पुनः स्मरण (Recall)—** संग्रहण किए गए स्मृति के भंडारण को पुन: स्मरण करने से पूर्व में स्थिर की गई धारणा को प्रकट करते ही वे स्मृतियाँ व्यक्त हो जाती हैं।

4. **प्रत्यभिज्ञा (Recognition)—** प्रत्यभिज्ञा से पूर्व में जिसे अवलोकन किया था, संग्रहण किया था। कई बार चेहरा स्मरण हो जाता है, लेकिन नाम व स्थान आदि का पता नहीं चलता है। स्मृति कोष्ठकों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। अरे, ये तो देवेंद्र कुमारजी हैं! इन्हें प्रेक्षाध्यान शिविर, जैन विश्व भारती में मैंने देखा था। साथ ही उनसे जुड़ी हुई बहुत सी बातें स्मृति—पटल पर उतर आती हैं। इस स्मृति को 'प्रत्यभिज्ञा' कहेंगे। कई बार स्मृति—पटल पर ध्यान केंद्रित करने के बाद भी नाम, स्थान का स्मरण नहीं हो पाता है। तब महसूस होता है कि मेरी स्मृति दुर्बल हो गई है। सामनेवाले व्यक्ति ने अपना नाम, पता और प्रेक्षाध्यान शिविर में साथ रहने की बात कही, तब सारी बातें स्पष्ट हो पाईं।

स्मृति कमजोर क्यों?

जब याद की हुई वार्त्ता, घटना स्मृति में नहीं आती, तब लगता है कि स्मृति कमजोर हो गई है। सामनेवाले व्यक्ति ने जब मेरा नाम, स्थान आदि का परिचय देकर आमंत्रित किया, तब भीतर विचार प्रकट होता है। स्मृति कमजोर होने लगी है। उसके कारण क्या हैं? स्मृति के मंद होने के कुछ कारण हैं। उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है—मल का अवरोध और कफ की अधिकता। मल का अवरोध मस्तिष्क को प्रभावित करता है। कफ का निमित्त भी स्मृति को दुर्बल बनाता है। मलावरोध से विजातीय तत्त्व जब बाहर नहीं निकल पाता है, तब वह मल ऊर्ध्वमुखी बनता है, बाहर आने का रास्ता खोजता है। बाहर निकलने की यह प्रक्रिया जुकाम, सिरदर्द और बुखार के रूप में अभिव्यक्त होती है। जुकाम साधारण सी बीमारी लगती है, किंतु यह भयंकर समस्या बन जाती है। कफ स्मृति—पटल को नुकसान पहुँचाता है, साथ ही फेफड़ों में जमने से टायफाइड तथा मस्तिष्क में जमने से स्मृति—ह्रस के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। आलस्य निरंतर बना रहता है। नींद की अधिकता सुबह, मध्याह्न, रात्रि उसे घेरे रहती है। पढ़ने के समय उसे नींद घेर लेती है। पढ़ने में मन नहीं लगता है। खेल, मनोरंजन आदि उपक्रमों की ओर मन आकर्षित रहता है।

निषेधात्मक दृष्टिकोण बना रहता है। स्वाध्याय और ध्यान में मन नहीं लगता है। याद किए हुए विषय पर संरक्षित नहीं रहते।

स्मृति विकास के व्यावहारिक उपाय

शीतल पदार्थ का सेवन मात्रा से अधिक नहीं किया जाए। न करें तो और अच्छा रहता है। मल का अवरोध न रहे। उसके लिए उष:पान के पश्चात् मंडूकासन सरल उपाय है। मेरुदंड को सीधा रखकर सदैव पाठ पढ़ने से ग्रहणशीलता बढ़ती है। स्मृतिगत विषयों का पुन: स्मरण करने से विस्मृत होनेवाले पाठ पुन: स्मरण हो जाते हैं। पढ़ने के बाद उन विषयों को सारांश के रूप में अपनी भाषा में संकलित कर लिया जाए तो विस्मरण नहीं हो पाता है। अधिक वार्त्तालाप भी व्यक्ति की स्मृति को स्वस्थ नहीं होने देता। अत: मौन का अभ्यास भी स्मृति के विकास में सहयोगी बनता है। दृढ़ संकल्प और विधायक चिंतन भी स्मृति विकास में सहायक होता है।

1. बैठने की विधि : रीढ़ की हड्डी सीधी रखकर बैठें। जिस आसन में भी सुविधापूर्वक बैठ सकें, उसी आसन में बैठें।

2. ज्ञान—मुद्रा : दोनों हाथों की तर्जनी और अँगूठे के पोरों (अग्र भाग) को मिलाकर इस प्रकार घुटने पर रखें कि हथेली का निचला भाग घुटने पर रहे।

3. महाप्राण ध्वनि : सोने से पूर्व, सोकर उठने के तुरंत बाद एवं पढ़ने से पूर्व तीनों समय नौ—नौ बार महाप्राण ध्वनि का अभ्यास करें।

4. आसन : योगमुद्रा, सर्वांगासन एवं शशांकासन का नियमित अभ्यास करें (समय: प्रात: 10 मिनट, खाली पेट)।

5. ध्यान : ज्ञान—केंद्र (चोटी का स्थान) पर सूरजमुखी के फूल की भाँति चमकते हुए पीले रंग का ध्यान करें। (अध्याय 3 के अनुसार)

6. भावना : रात को सोते समय शरीर को शिथिल करके भावना करें—मेरी स्मरण—शक्ति बढ़ रही है, मस्तिष्क में न्यूरोन सक्रिय और दीर्घजीवी हो रहे हैं।

7. बंध : जालंधर बंध लगाकर कनपटियों पर पीले रंग का ध्यान करें। (समय : 3 मिनट)

8. जप : 'णमो णाणस्स' (मैं ज्ञान को नमस्कार करता हूँ) का सोते समय जप करें। (समय : 5 मिनट)

स्मृति—विकास में एकाग्रता का योग

एकाग्रता : स्मृति—विकास में एकाग्रता सहायक होती है; किंतु सारी एकाग्रताएँ सहायक नहीं होतीं। प्रियता और विषय के अनुराग में एकाग्रता आती है, परंतु वह एकाग्रता व्यक्ति को मूढ़ बना देती है। अध्ययन एवं अध्यापन में आनेवाली एकाग्रता स्मृति का विकास करती है। उसके लिए ध्यानासन का प्रयोग करें। सुखासन, वज्रासन, समपादासन आदि में से किसी एक आसन का चुनाव करें। वीतराग या ज्ञान मुद्रा लगाएँ। आँखें खुली रखें। गरदन को पीछे ले जाएँ। आकाश की ओर एकटक निहारें। किसी एक बिंदु पर एकाग्र हो आँखों को बिना टिमटिमाए एक मिनट प्रयोग करें। फिर आँखें बंद कर गरदन को सीधा कर लें। इस प्रयोग को तीन बार दोहराएँ।

समय—5 से 10 मिनट।

लाभ—मन पर लगाम लगेगी। विचार शून्य एवं मन प्रशस्त होगा।

सर्वेंद्रिय संयम मुद्रा

सुखासन में स्थिरता से ठहरकर शरीर को शिथिल करें। मेरुदंड को सीधा रखें। दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों को बंद करें। तर्जनी और मध्यमा से दोनों आँखों को बंद करें। दोनों हाथों की अनामिका से ऊपरी होंठ को बंद करें। छोटी उँगली से नीचेवाला होंठ बंद करें। भीतर परम शांति का अनुभव करें। दो—दो मिनट की दो या तीन आवृत्ति करें।

लाभ—तनाव—मुक्ति, एकाग्रता, स्व की अनुभूति।

एकाग्रता के लिए जीवन विज्ञान खेल

कक्षा के विद्यार्थियों को दो—दो के समूह में बाँट लें। दोनों विद्यार्थी एक—दूसरे के आमने—सामने बैठें। मेरुदंड सीधा रहे। प्रशिक्षक सभी विद्यार्थियों को जागरूक बनाएँ। पूरा श्वास—प्रश्वास करें। श्वास लें और छोड़ें। जब प्रशिक्षक 'प्रारंभ' कहें, तब प्रतियोगी महाप्राण ध्वनि प्रारंभ करें। जिसका प्रश्वास ध्वनि के साथ पूरा हो गया हो, वह हार को स्वीकार करता हुआ अपना हाथ ऊपर उठाए। 10 जीतेंगे, 10 हारेंगे। जीतनेवालों का पुन: 5—5 का ग्रुप बन जाएगा। फिर उसी तरह शिक्षक पुन: श्वास भरवाएँ और रेचन करवाएँ। पुन: पूरा श्वास भरें और महाप्राण ध्वनि का प्रयोग प्रारंभ कराएँ। इनमें से 5 जीतेंगे, 5 हारेंगे। दो—दो की परस्पर प्रतियोगिता कराएँ। इस प्रकार जो अंत में विजयी बने, उसे सम्मानित और पुरस्कृत करें।

एकाग्रता के लिए गणित का प्रयोग

सभी छात्रों को गोलाकार वृत्त में खड़ा करें तथा 1 से लगातार गिनती एक—एक छात्र को बोलने को कहें। परंतु पहले सभी को सूचित कर दें कि जिस संख्या में 3 का पूरा—पूरा भाग जाता है या जिस संख्या में 3 का अंक सम्मिलित हो, उस संख्या के स्थान पर 'ॐ अर्हम्' का उच्चारण करना है। इस प्रकार जो छात्र गलती करेगा, वह खेल से बाहर हो जाएगा। अंत में एक छात्र रहेगा, जिसे विजयी घोषित किया जाएगा।

सारांश रूप में, स्मृति के विकास में जीवन विज्ञान के प्रयोगों की अपनी निर्विवाद भूमिका है। जीवन विज्ञान के ये प्रयोग व्यक्ति का शैक्षिक तथा भावात्मक विकास करते हैं।

❑

अध्याय—25

शाकाहार : सात्त्विकता का प्रतीक

- जीवन के लिए आहार आवश्यक है। उसके बिना प्राणी जीवित नहीं रह सकता।
- स्वास्थ्य, वृत्ति और संस्कारों की दृष्टि से शाकाहार अधिक उपयोगी है।
- मांसाहार से शारीरिक व मानसिक विकृतियाँ और पर्यावरण के दूषित होने की संभावना होती है।
- 'सव्वे पाणा ण हंतत्वा'—सभी प्राणी अहंतव्य हैं। किसी को मारो मत, पीड़ित मत करो।

शाकाहार : सात्त्विकता का प्रतीक

जीवन के लिए आहार अनिवार्य

जीवन के लिए आहार जरूरी है। उसके बिना प्राणी जिंदा नहीं रह सकता। भोजन कैसा हो? उसे कैसे प्राप्त किया जाए? ये विमर्शनीय बिंदु हैं। 'जीवो जीवस्य भोजनम्।' जीव जीव का भोजन है। बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। इस संसार में गलागल मची हुई है। जिसकी लाठी उसकी भैंस। ताकतवर सदैव कमजोर को खाता है। शक्तिशाली ही अपनी हुकूमत चलाता है। एक कवि ने लिखा है—

'सत्ता जिनके हाथ में वे क्या नहीं कर सकते।
आकाश के तारे तोड़कर जमीन पर ला सकते॥'

ताकतवर इनसान क्या नहीं कर सकता! पर वह कितना ही ताकतवर क्यों न हो, पर भूख तो उसे भी सताती है। जब भूख लगती है तो उस क्षुधा की ज्वाला को शांत करना ही पड़ता है। यह ज्वाला सर्वभक्षी है, जो आ जाए, उसे भस्म कर देती है। मानव जाति ज्यों—ज्यों सुसंस्कृत हुई, उसके भोजन में भी परिवर्तन आने लगा। नरभक्षी से पशुभक्षी बना। पशुओं में पालतू और उपयोगी जानवरों को मारना निषेध हुआ। शाकाहार का प्रयोग बढ़ा।

स्वास्थ्य के लिए शाकाहार

किसी प्राणी की हत्या बिना आवेश, क्रोध, क्रूरता के हो नहीं सकती। आवेश और क्रोध से वृत्तियाँ खराब होती हैं। वृत्तियों के खराब होने से परस्पर पारिवारिक व सामाजिक समस्याएँ पैदा होती हैं। मांसाहार की बजाय वनस्पति का आहार अधिक सात्त्विक और स्वास्थ्यवर्धक है। आचार्यों ने इस बात पर ध्यान दिया। मांसाहारी शाकाहारी भी है। शाकाहार तो व्यक्ति छोड़ नहीं सकता है। मांसाहार और शाकाहार दोनों में से यदि एक का चुनाव करना हो तो स्वास्थ्य, वृत्ति और संस्कारों की दृष्टि से शाकाहार ही उपयोगी है।

पशुओं का शिकार करनेवाले या अन्य प्राणियों की हत्या करनेवाले व्यक्ति में स्वअल्प आवेश भी अनर्थ गढ़ देता है। मांसाहारी प्राणियों को जो बूचड़खानों में कत्ल किया जाता देख ले, उनकी पीड़ा और दयनीय स्थिति से उनका पत्थर दिल भी पिघल सकता है। मांसाहार करनेवाले वहाँ की स्थिति का पूरा जायजा ले लें तो वे मांसाहार शायद ही कर पाएँ। क्रूरतम दृश्य को देखकर व्यक्ति सदा—सदा के लिए इस कृत्य से दूर हो सकता है।

मांसाहार का निषेध क्यों?

मांसाहार का निषेध भगवान् महावीर ने क्यों किया, जबकि भगवान् महावीर क्षत्रिय परिवार से जुड़े हुए थे? उनको इसकी कोई परवाह नहीं। जिस सत्य को जाना, अनुभव किया, उसके अनुसार आचरण किया। जब उन्हें 'आयतुला

पयासु' की अनुभूति हुई, समस्त प्राणियों में आत्मानुभूति का बोध प्रकट हुआ, वे अनायास ही करुणा से भर गए। उन्होंने घोषणा की कि 'सव्वे पाणा ण हंतत्वा', सभी प्राणी अहंतव्य हैं। किसी को मारो मत, पीड़ित मत करो। भगवान् महावीर को 'प्राणी मित्र' बना दिया। दूसरे के प्राण हरने या वध करने का हक किसने आपको दिया? मांसाहार नहीं करने का निषेध ही नहीं, वरन् उन्होंने अहिंसा अणुव्रत के अंतर्गत व्रत दिलवाया। साधु—साध्वियों के लिए अहिंसा महाव्रत में हिंसा का मनसा, वाचा, कर्मणा पूर्ण निषेध है। श्रावक एवं श्राविकाओं ने भी अणुव्रत स्वीकार किया। उस युग में लाखों लोगों ने व्रतों को स्वीकार कर हिंसा एवं मांसाहार का परित्याग किया। मांसाहार करने का एक सशक्त आंदोलन बन गया।

मांसाहार : रोगों का घर

आधुनिक शरीर—शास्त्री, आहार—शास्त्री, स्वास्थ्य—शास्त्री, पर्यावरण वैज्ञानिक इस सच्चाई को स्वीकार करते हैं कि मांसाहार से शारीरिक व मानसिक विकृतियाँ और पर्यावरण के दूषित होने की संभावना है। मांसाहार उत्तेजक है। उससे परस्पर मार—काट, लड़ाई—झगड़े अधिक होते हैं। मांसाहारी सहनशील कम होते हैं। मांसपेशियों में कड़ापन आने से उनका लचीलापन गायब हो जाता है। मांसाहारियों को हृदयाघात, ब्रेन हैमरेज आदि बीमारियाँ अधिक होती हैं। इसके अतिरिक्त, मृत प्राणियों को मारते समय उनमें भय पैदा होता है तथा प्राणियों में स्वयं अपनी व्याधियाँ भी होती हैं, जिससे मांसाहारी कई बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। मांसाहार के लिए जिन प्राणियों को ग्रहण किया जाता है, उनके भी अपने संस्कार होते हैं। वे संस्कार भी मांसाहारी व्यक्तियों में संक्रांत क्यों नहीं होंगे! फलत: वे ऐसे मांसाहारी पशुओं के संस्कार से संक्रांत हो जाते हैं और पशुवत् आचरण करने लगते हैं।

इसलिए मांसाहार का निषेध तीर्थंकरों ने किया है। वर्तमान युग में सारे विश्व में शाकाहार का आंदोलन चलने लगा है। विभिन्न शोधों से यह निष्कर्ष निकला है कि मांसाहार की अपेक्षा शाकाहार श्रेष्ठ है। खेल, शक्ति, विचार, भावना और बौद्धिक क्षमता के विकास में शाकाहार को ही श्रेष्ठतम माना गया है।

आहार—विजय से आत्मजयी

आचार्य कुंद—कुंद फरमाते हैं—जो आसन—विजय, आहार—विजय, निद्रा—विजय नहीं जानता, वह जिन शासन को नहीं जानता है। आहार—विजय के बिना व्यक्ति साधना कर ही नहीं सकता। आहार—विजय से संकल्प की दृढ़ता आती है। संकल्पशील व्यक्ति ही जीवन में सफल होता है। आहार का लोलुपी व्यक्ति साधना में सफल नहीं हो सकता। आहार शरीर को चलाने के लिए जरूरी है, लेकिन आहार के गुलाम न बनें। व्यक्ति भोजन को भी साधना का अंग बना सकता है।

सम्राट् श्रेणिक ने भगवान् महावीर से पूछा, ''आपके शासन में शिष्य समुदाय में उत्कृष्ट क्रिया—साधना करनेवाला कौन है?'' उन्होंने कहा, ''धन्ना अणगार, जो बैले—बैले दो दिन उपवास एवं तप करता है, पारणे में बाहर फेंकने जैसे रुक्ष भोजन को समभाव से जागरूकता से ग्रहण करता है, वह अनासक्त मुनि है, सर्वश्रेष्ठ साधना करनेवाला है।'' यद्यपि भगवान् महावीर शासन में मास—मास, चार—चार मास, छह मास तप करनेवाले मुनि थे; परंतु उन्होंने उनका नाम नहीं लिया और धन्ना अणगार का नाम लिया। सम्राट् श्रेणिक अभिभूत थे। भगवान् की वाणी से उन्होंने धन्ना अणगार की वंदना कर उनकी कही हुई बात का उल्लेख किया। फिर भी उनके मन में अहंकार के भाव नहीं आए, समभाव से अपनी साधना में लीन रहे। आहार और अनाहार दोनों स्थितियों में अपने आपको जागरूक रखना साधना का अंग है। ऐसे ही होता है आहार—विजय।

भोजन और रोग

'स्थानांग सूत्र' में रोग के 9 कारणों की ओर संकेत किया गया है—

1. अतिभोजन— जो व्यक्ति अतिभोजन करता है, यानी ठूँस—ठूँसकर खाता है, वह बीमार पड़ता है।

2. अहितकर भोजी— जो शरीर, मन और प्राण के अनुकूल नहीं, वैसा भोजन जिह्वा के स्वादवश करता है, वह शरीर के लिए अहितकर और मन एवं भावों के लिए भी अहितकर है।

3. अध्यशन— बार—बार भोजन करना, समय—असमय भोजन करना।

4. भोजन की प्रतिकूलता— प्रतिकूल भोजन करना; जैसे—खरबूजे के साथ दूध, दाल के साथ दही आदि।

5. उच्चार—प्रस्त्रव का निरोध— उच्चार—प्रस्त्रव को रोकने से रोग पैदा होता है।

6. अतिनिद्रा— सीमा से अधिक नींद के सेवन से रोग पैदा होता है।

7. अतिजागरण— सीमा से अधिक जागने से रोग पैदा होता है।

8. यात्रा— अधिक यात्रा से व्यक्ति अस्वस्थ होता है।

9. काम विकार— वासना में डूबे रहने से रोग पैदा होते हैं।

प्रथम चार कारण भोजन के हैं। भोजन का विवेक आवश्यक है। अविवेकी ही ऐसी समस्या पैदा करते हैं। वे स्वयं तो दु:खी होते ही हैं, साथ में परिवारजन को भी दु:खी बनाते हैं। शेष पाँच कारणों में शरीर को संतुलित व्यवस्था नहीं देने के परिणाम से व्यक्ति रोग से आक्रांत हो जाता है। उच्चार—प्रस्त्रव शरीर की आवश्यकता है। आहार आवश्यक है तो निराहार भी उतना ही जरूरी है। नींद—जागरण में अति नहीं, अधिक यात्रा भी शरीर को बीमार करने में और स्वाध्याय ध्यान में बाधक है। वासनाओं पर संयम रखकर ही शक्ति का सदुपयोग कर सकते हैं। अतएव, जीवन—शैली का अस्त—व्यस्त होना रोगों का प्रादुर्भाव उत्पन्न करता है।

शाकाहार कैसे अपनाएँ?

किसी भी श्रेष्ठ बात को जन—जन तक पहुँचाना है तो एक ही उपाय है कि उसमें गुण, महत्ता और व्यवस्था के द्वारा समाज में उसे प्रतिष्ठित करना। प्रतिष्ठित करने के लिए उसको समाज के सम्मुख प्रस्तुति देनी होगी। आज मीडिया शक्तिशाली हो गया है और जनता तक उसकी पहुँच आसान हो गई है। मीडिया के माध्यम से उसके गुण, महत्ता, दर्शन जनता तक पहुँचाया जाए। एक युग था, ग्राम—ग्राम सत्संग के माध्यम से संत जन कार्य करते थे। आज भी वे कार्य कर रहे हैं, किंतु जो कार्य पहले पाँच वर्ष में नहीं होता था, वह आज मीडिया के माध्यम से पाँच दिन में पूरे समाज में हलचल पैदा कर देता है। विदेशों में भी शाकाहार के प्रति आज आकर्षण बढ़ रहा है। शाकाहार का महत्त्व जनता को सहज उपलब्ध हो, उसका सघन प्रयास हो, यह शाकाहार आंदोलन के मुखिया जन को ध्यान देना होगा।

शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्य—पुस्तकों आदि के माध्यम से शाकाहार का महत्त्व समझाया जाए तो सहज ही करोड़ों—करोड़ लोगों में इसका संदेश पहुँचेगा, ऐसा विश्वास है। अंडे की एजेंसियाँ इसके प्रचार—प्रसार में कितनी सजगता से लगी हुई हैं! ऐसे ही शाकाहार के प्रेमी जन को भी इसके प्रचार—प्रसार का कार्य करना होगा। निस्संदेह व्यक्ति, समाज और विश्व के नागरिकों का शाकाहार में ही हित है।

अंत में, निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि आहार का जीवन में महत्त्व निर्विवाद है। शाकाहार मांसाहार की तुलना में कहीं श्रेष्ठ है। मांसाहार का सेवन अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों तथा विकारों के लिए उत्तरदायी होता है। किसी को न मारना तथा पीड़ित न करना भी व्यक्ति के विकास को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करता है।

❑

अध्याय—26

पारिवारिक सौहार्द प्रशिक्षण कार्यशाला

- सौहार्द चेतना की पवित्रतम स्थिति है।
- सौहार्द की पहली शर्त है—परस्पर सही समझ। एक—दूसरे की अच्छाई को समझें। केवल समझें ही नहीं, अच्छाई को अभिव्यक्ति भी दें।
- सौहार्द की सबसे बड़ी बाधा है—संदेह। यह ऐसा विष—बीज है, जो आपसी सौहार्द को जड़—मूल से जला डालता है।
- परिवार टूटने का मुख्य कारण है अहं। जहाँ परस्पर अहं टकराते हैं, वहाँ परिवार बिखर जाता है।
- पारिवारिक सौहार्द प्रशिक्षण कार्यशाला में प्रशिक्षण द्वारा परिवारों में परस्पर संवाद की धारा बहाकर एक पवित्र वातावरण का निर्माण किया जा सकता है।

सौहार्द : क्यों और कैसे?

सौहार्द चेतना की पवित्रतम स्थिति है। सौहार्द वह आत्मीय भाव है, जिससे व्यक्ति प्रसन्न व आनंदित रह सके। चेतना का मूल स्वरूप ज्ञान है। जिससे ज्ञान हो, वह चेतना है। ज्ञान जब तटस्थ वीतराग स्थिति में रहता है, तब वह बंधन नहीं लाता है। बंधन का कारण राग और द्वेष हैं। 'उत्तराध्ययन' में स्पष्ट उद्घोषित किया गया है—'रागो य दोसो विय कम्म बीयं', कर्म के बीज राग और द्वेष हैं। उससे ही संसार की सृष्टि होती है। राग और द्वेष से ही सौहार्द विखंडित होता है। राग अर्थात् आसक्ति और कामना हैं। ये परस्पर सौहार्द नहीं रहने देते हैं। कामना और आसक्ति से स्वार्थ पनपता है। स्वार्थ सौहार्द को मिटा देता है। द्वेष तो इससे भी अधिक खतरनाक है। वह सौहार्द और सद्भाव को चूर—चूर कर देता है। व्यक्ति अकेला रहता है। अपनी इच्छानुसार रहे, खाए—पीए, जो चाहे सो करे, कोई उसे रोकनेवाला नहीं; लेकिन ज्यों ही एक से दो बने कि उनको एक—दूसरे का खयाल रखना ही होगा, एक—दूसरे का सहयोग करना ही होगा। तभी उनका सुखद सहवास हो सकेगा। इसलिए आचार्य उमास्वाति ने 'परस्परोपग्रह जीवानाम्' परस्पर उपकार के बिना जीवन नहीं चल सकता। दो का मिलन ही परिवार है। दोनों में परस्पर सही समझ और सौहार्द होगा, तभी परिवार में शांति रह सकती है। इसलिए शांति और जीवन को सुविधानुसार चलाने के लिए सौहार्द आवश्यक है।

परस्पर सौहार्द हो कैसे?

मुख्यत: चिंतनीय बिंदु यह है कि परस्पर सौहार्द रहे कैसे? सौहार्द की पहली शर्त है—परस्पर सही समझ। एक—दूसरे की अच्छाई को समझें। केवल समझें ही नहीं, अच्छाई को अभिव्यक्ति भी दें। प्यार से पुचकारने पर अपने आपको समर्पित कर देना प्राणिमात्र का स्वभाव है। एक—दूसरे की सही समझ के लिए प्यार की बयार चाहिए। एक—दूसरे के प्रति विश्वास पैदा होने पर ही परस्पर सौहार्द का भाव पैदा हो सकता है। सौहार्द की सबसे बड़ी बाधा है संदेह। संदेह को दिखाया नहीं जा सकता। वह तो बिना दिखाए ही प्रकट हो जाता है। शंका, संदेह ऐसा विष—बीज है, जो आपसी सौहार्द को जड़—मूल से जला डालता है। संदेह आदि बाधाओं को दूर कर परस्पर सहयोग की भावना से ही सौहार्द का विकास संभव है।

परिवार के साथ कैसे रहें?

परिवार की इकाई में सौहार्द, सद्‌भाव और सहिष्णुता, सहने की क्षमता के विकास से एक साथ लंबे समय तक रह सकते हैं। उम्र व समय इसमें बाधा नहीं। संदेह रूपी बाधा को दूर कर लिया जाए तो निस्संदेह परिवार में रहने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। एक—दूसरे की हरकतों को समता से सहन करने का भाव परिवार में एक साथ रहने की भूमिका का निर्माण करता है। एक—दूसरे को सहे बिना साथ—साथ रह ही नहीं सकते। परस्परता ही परिवार का शक्तिशाली आधार बनता है। तीसरा मुख्य बिंदु है—उदारता। उदारता से तात्पर्य है एक—दूसरे का खुले दिल से सम्मान करें। पदार्थ, धन, स्थान आदि के संदर्भ में स्वार्थपरता ही परिवार के टूटने का निमित्त बनता है। उदारता एक—दूसरे को जोड़ती है।

पिता—पुत्र वर्षों से साथ—साथ भोजन करते थे, एक—दूसरे को सम्मान देते थे। एक दिन पुत्र के मन में आया, मैं कब तक पिताजी के साथ खाना खाता रहूँगा? अपने मन—पसंद का भोजन कब करूँगा? अपने दोस्तों के साथ मौज—मस्ती कब करूँगा? पुत्र ने नाराजगी जताते हुए कहा, ''आपके कारण मेरे दोस्त भोजन पर नहीं आ सकते हैं, इसलिए मैं आज से आपके साथ खाना नहीं खाऊँगा। मेरा भोजन अलग से बनेगा।''

पिता मौन रहा। पुत्र ने दूसरे दिन अपने ऊपर के आवास—स्थल में अलग से भोजन बनाया। भोजन के समय पुत्र भोजन के लिए गया। पिताजी भी ऊपर आ गए और परोसे हुए भोजन पर बैठ गए और प्यार से बोले, ''बेटा, कल तक तुम मेरे साथ भोजन करते थे, आज से मैं तुम्हारे साथ करूँगा।''

अब पुत्र क्या बोलता! पिता की उदारता ने उसका मानस बदल दिया। वह पिता के प्रति कृतज्ञता के भाव से भर गया। जहाँ पिता इतना उदार और पुत्र इतना समर्पित हो, वहाँ परिवार में सौहार्द की गंगा का प्रवाह सतत रहे, इसमें कौन सा आश्‍चर्य है? इस तरह के समर्पण और उदारता के भाव जहाँ रहते हैं, वहाँ साथ—साथ रहने का आनंद ही कुछ अलग होता है। ऐसे वातावरण में परिवार बिखर नहीं सकता। एक—दूसरे के प्रति सही समझ, परस्पर उदारता और समर्पण भाव परिवार को स्नेह के धागे में पिरोए रखते हैं। फिर सवाल रह गया—क्यों बिखर रहे हैं परिवार? उसके कारणों को खोजना ही होगा, तभी समस्या का निराकरण किया जा सकता है।

बिखरते परिवार : कारण और निवारण

परिवार टूटने का मुख्य कारण है अहं। जहाँ परस्पर अहं टकराते हैं, वहाँ परिवार बिखर जाता है। अहंकार किसका? वैभव, रूप, यौवन, योग्यता, पद और प्रतिष्ठा का। एक विषय ऐसा है, जिससे न चाहते हुए भी परस्पर दूरियाँ बढ़ती हैं, एक—दूसरे के अहंकार टकराते हैं, परिवार बिखरने के कगार पर आ जाते हैं।

अहंकार किसका? वैभव का? वैभव क्या है, कितना है? संसार के वर्तमान में धनाढ्य कहलानेवाले व्यक्ति ने अहंकार नहीं किया, अपितु लोगों के हित और कल्याण के लिए अपनी संपत्ति का विसर्जन कर दिया। तुम्हारे पास है ही क्या? परस्पर किस वैभव के लिए अहंकार करते हो? दुनिया में एक से बढ़कर एक आला व्यक्ति वैभव—संपन्न बैठे हैं। आगमकार कहते हैं, ''इंद्र के जूते के वैभव का अंकन किया जाए तो दुनिया के सभी धनाढ्यों की संपत्ति उसके सामने तुच्छ हो जाए। तब भला मैं क्यों वैभव के लिए इतराता हूँ? वैभव है कितना? बैंक बैलेंस है, फार्म हाउस, मकान आदि सबकुछ हैं। आखिर आदमी के रहने के लिए एक मकान, खाने के लिए आवश्यक सामग्री, सोने के लिए एक पलंग। किस वैभव का अहंकार करें? वैभव के लिए एक—दूसरे को हीन समझना कहाँ की बुद्‌धिमानी है! इस अहं वृत्ति से ही परिवार बिखरने लगते हैं।''

अहंकार का दूसरा कारण है—रूप, यौवन। रूप और यौवन स्थिर रहनेवाला तत्त्व नहीं है। यह तो पहाड़ी नदी के पानी की तरह वेग से ऐसा उतरता है कि पता ही नहीं चलता कि नदी कब पहाड़ से उतर गई! यौवन और रूप का

क्या घमंड? चमड़ी को थोड़ा सा कुरेद दिया जाए तो रक्त का प्रवाह चलने लगता है। शरीर के नवद्वारों से प्रतिक्षण गंदगी का प्रवाह हो रहा है। भारतीय वाङ्मय में सनतकुमार का उदाहरण आता है। इंद्र ने अपनी सभा में सनतकुमार के रूप की प्रशंसा की कि ऐसा रूप, यौवन—संपन्न भू—मंडल पर दूसरा कोई नहीं है। एक देवता के मन में संकल्प उठा कि क्या ऐसा इनसान, जो हाड़—मांस का बना हुआ है, क्या वह इतना सुंदर हो सकता है? उसने ब्राह्मण का रूप बनाया और सनतकुमार चक्रवर्ती की राजधानी में पहुँचा। सनतकुमार सामान्य स्थिति में स्नान की तैयारी कर रहे थे। पहरेदार ने बताया कि ''एक बूढ़ा ब्राह्मण बहुत दूर से आया है, आपके दर्शन का प्यासा है।''

सनतकुमार चक्रवर्ती ने उसको आने की अनुमति दे दी।

ब्राह्मण उसकी रूप—संपदा को देखकर हैरान हो गया। सचमुच इंद्र ने जो कहा, वह यथार्थ है। प्रशंसा सुनकर सनतकुमार चक्रवर्ती बोले, ''अभी तो मैंने स्नान नहीं किया है। जब राजसिंहासन पर बैठूँ, तब देखना मेरा स्वरूप और वैभव कैसा है!'' सनत कुमार सिंहासन पर बैठे और ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण मुँह मचोड़कर गरदन हिलाने लगा। ''पहलेवाला नहीं रहा।'' ''ब्रह्मदेव, कहो तो सही, क्या हुआ?'' ''चक्रवर्ती रत्न! जरा पीकदानी में थूककर देखें।'' पीकदानी में थूका तो कीड़े बिलबिला रहे थे। अरे, यह कैसे? शरीर में 16 भयंकर रोगों ने हमला बोल दिया। चक्रवर्ती हैरान था, यह हुआ कैसे? जो हो गया, उसका अब क्या इलाज? चक्रवर्ती को रूप एवं वैभव से वैराग्य हो गया।

पद और प्रतिष्ठा का भी कैसा अहंकार! चक्रवर्ती से बड़ा पद और प्रतिष्ठा किसकी हो सकती है? जब उसका यह हाल है तो दूसरे व्यक्ति के लिए क्या कहा जा सकता है! आज मंत्री है, कल मंत्री पद से मुक्ति। ये पद कोई स्थायी नहीं होते। चुनाव से जीते, पद मिला, हारे, पद गया।

संवादहीनता को सुधारें

परिवार के बिखरने का एक महत्त्वपूर्ण बिंदु है—संवादहीनता। एक—दूसरे की सुनते नहीं, एक—दूसरे को समझने का प्रयास करते नहीं, इससे दूरी बढ़ती जाती है। फिर संदेह, शंका, वहम की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं है। तब कहाँ जाएँ? इसका सरल उपाय है, एक साथ आमने—सामने बैठकर संदेह का निवारण किया जाए। सभी अपनी—अपनी धारणा बना लेते हैं। धारणा परिपक्व हो जाती है। उसके अनुसार व्यक्ति अपना मानस बना लेता है, फिर उसके अनुसार सोचता है और निर्णय लेता है। यही समस्या का मूल है। एक—दूसरे से संवाद करते नहीं, अपनी धारणाओं के द्वारा एक—दूसरे को आरोपित करते रहते हैं। संवाद को बहाल करने का सरल उपाय है— पारिवारिक संगोष्ठी। परिवार के सदस्य परस्पर मिल—बैठकर सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाएँ। एक—दूसरे की अच्छाइयों को अभिव्यक्ति दें। एक पखवाड़े (दो सप्ताह) में हुए श्रेष्ठ कार्य के लिए साधुवाद दें। सब उसकी अनुशंसा करें। परिवार में होनेवाली कठिनाई और समस्या का समाधान मिल—जुलकर करें, तभी सौहार्द का वातावरण निर्मित हो सकता है।

सौहार्द और सद्भाव में बाधक तत्त्व पुरानी रूढ़ मान्यताएँ भी हैं। एक घर में दो कलमें नहीं चल सकतीं, अर्थात् स्त्रियों को पढ़ाया नहीं जा सकता। लड़कियाँ आज पढ़—लिखकर अच्छे पदों, डॉक्टर, इंजीनियर, एम.बी.ए., आर.ए.एस., आई.ए.एस. अधिकारी भी हैं। शादी होने पर बुजुर्ग, सास—ससुर चाहते हैं कि बहूरानी रसोई का काम सँभाले अथवा सास—ससुर की सेवा करे। ऑफिस में कार्य न करे। पढ़ी—लिखी बहूरानियाँ दिल मसोस के रह जाती हैं। अंतत: खट—पट का परिणाम तलाक का रास्ता ले लेता है या फिर कोर्ट—कचहरी के द्वार खटखटाते

फिरते हैं।

शिक्षा के विकास के युग में पति—पत्नी दोनों अपनी इच्छा से जो कार्य करना चाहें, उसे स्वीकार करना चाहिए। अच्छा तो यह हो कि पति—पत्नी दोनों एक—दूसरे का सम्मान करते हुए, सास—ससुर की भावना का आदर करते हुए, उनकी उचित सेवा—व्यवस्था कर भावनात्मक आशीर्वाद प्राप्त करें। तभी सौहार्द, सद्भाव विकसित हो सकते हैं।

आज पति—पत्नी के परस्पर संबंधों पर भी प्रश्नचिह्न पैदा हो रहे हैं। कारण, संदेह। संदेह की कोई सीमा नहीं। लाज, शर्म और मर्यादा के नाम पर किसी की स्वतंत्रता का हनन धर्म कैसे हो सकता है? उच्छृंखलता अपराध है, पाप है; मर्यादा और अनुशासन आत्मधर्म है। एक—दूसरे का सम्मान और स्वाभिमान भी सुरक्षित रहना चाहिए। वैचारिक स्वतंत्रता बुरी नहीं है; लेकिन आग्रह की मनोवृत्ति खतरनाक हो सकती है। इसलिए परिवार का प्रत्येक सदस्य समन्वय के प्रति समर्पित रहे, तभी सौहार्द की बेल फलवान बन सकती है। परस्पर विश्वास की रस्सी जितनी मजबूत होगी, पारिवारिक प्रेम की श्रृंखला उतनी ही मजबूत और सुदृढ़ होगी।

परिवार का मतलब ही प्रेमपूर्ण सहवास है। परिवार प्रेमपूर्ण सह—अस्तित्व का स्वर्ण मंदिर है, जहाँ एक—दूसरे की श्रेष्ठता को सँजोया जाता है। श्रेष्ठ परिवार समाज की ऐसी कड़ी है, जो एक—दूसरे को मजबूती से बाँधे रखती है।

पारिवारिक सौहार्द प्रशिक्षण कार्यशाला ऐसी सुदृढ़ और व्यवस्थित व्यवस्था को संजीवित कर सकती है, जिसमें परिवारों में परस्पर संवाद की धारा बहकर एक पवित्र वातावरण का निर्माण हो सकता है।

पारिवारिक सौहार्द प्रशिक्षण कार्यशाला एक गाँव की, एक परिवार की, वहाँ आनेवाले यात्रियों की भी हो सकती है। सुविधा की दृष्टि से एक क्षेत्र, परिवार एक साथ आते हैं। उनकी व्यवस्था एक साथ हो जाती है। साथ ही इस कार्यशाला में भाग लेने से पूज्यवरों की उपासना भी व्यवस्थित हो सकती है तथा साधु—साध्वियों के माध्यम से बालकों में संस्कार—निर्माण की दृष्टि से, सम्यकत्व दीक्षा, व्रत दीक्षा, जैन धर्म की विशेषताओं की जानकारी, तेरापंथ एवं उसकी विशेषताओं की जानकारी, आचार्य भिक्षु तथा तेरापंथ के आचार्यों का संसार को अवदान, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, अहिंसा प्रशिक्षण आदि के संदर्भ में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

पारिवारिक सौहार्द कैसे बढ़े, इसका प्रायोगिक प्रशिक्षण आनेवाले यात्रियों को, उपासकों को दिया जाए। संस्कार—निर्माण की गंगोत्री घर—घर पहुँच सकती है। 'जैन विश्व भारती' का प्रवास नया आलोक, नई चेतना की स्फुरणा कर सकेगा, ऐसी आशा की जा सकती है। पारिवारिक सौहार्द कार्यशाला की खुशबू समाज के साथ संसार में फैले, इस भावना के साथ पूज्यवरों का पुरुषार्थ साकार हो, यही मंगल भावना है।

सारांश में, यही कहा जा सकता है कि चेतना का विकास पवित्रता का प्रतीक है। इसका मूल आधार है—पारस्परिक समझ। इसके विकास की सबसे बड़ी बाधा है—संदेह की भावना। सौहार्द के अभाव में परिवार विघटित होते हैं। अत: सौहार्द की भावना का विकास करने के लिए कार्यशालाओं की आयोजना आवश्यक है।

❑

अध्याय— 27

आवश्यक है पारिवारिक सौहार्द

● मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। चिंतन स्वयं के लिए होता है, परिवार और समाज के लिए होता है।

● समझदारी का पहला तकाजा है—व्यक्ति सोचे कि उसे किस तरह का जीवन जीना है।

● भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार के रूप में एक संगठन विकसित किया गया है।

● यातायात के साधनों के विकास, शिक्षा का विकास और एक—दूसरे की संस्कृतियों के मिलन से कुछ परिवर्तन आया।

● आज आवश्यक है पारिवारिक सौहार्द प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन। हजार भाषणों की अपेक्षा एक कार्यशाला व्यक्तित्व के रूपांतरण में सहयोगी बनती है।

पारिवारिक कार्यशाला क्यों?

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। चिंतन स्वयं के लिए होता है, परिवार और समाज के लिए होता है। व्यक्ति अकेला कितना ही चिंतन करे, अंतत: उसे परिवार और समाज में उसका प्रयोग करना ही होता है। प्रयोग किए बिना व्यक्ति को जो लाभ प्राप्त हुआ, उसका परिणाम सब तक कैसे पहुँच सकता है? भगवान् महावीर ने 12 वर्ष तक अकेले साधना की, कैवल्यज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् संघ का प्रवर्तन किया। क्या आवश्यकता थी उन्हें तीर्थ की स्थापना करने की? धर्मसंघ का प्रवर्तन करने की? साधु—साध्वी, श्रावक—श्राविका इनका धर्म परिवार है। उसमें भी एक—दूसरे के प्रति सौहार्द, सद्भाव, सेवा और सहयोग की भावना विकसित की जाती है। जहाँ दो व्यक्ति परस्पर मिलते हैं, साथ रहते हैं, एक—दूसरे के विकास और हित—चिंतन का अनुचिंतन करते हैं, वह परिवार बन जाता है।

वसुधैव कुटुंबकम् का मूल मंत्र : परिवार

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार के रूप में एक संगठन विकसित किया गया है, जो एक—दूसरे के सहयोग, सौहार्द, सद्भाव एवं सेवा के भावों से जुड़ा हुआ है। परिवार की यह व्यवस्था एक—दूसरे के सहयोग, सद्भाव के खंभों पर टिकी हुई है, जिसने भारतीय संस्कृति को जीवंत रखा है। उससे चरित्र—निष्ठा व व्यक्ति—विकास में सहयोग मिला। हजारों—हजार वर्ष का इतिहास इस बात का साक्षी है, जिस तरह परिवार के सदस्यों में एकरूपता, एक—दूसरे के प्रति सद्भावना देखी गई है। वह अपने आप में विलक्षण है। यद्यपि समय—समय पर परिवार का रूप बदलता रहा, लेकिन उसके भीतर निहित भावना एक—दूसरे के प्रति हित—चिंता और कल्याण की भावना बराबर बनी रहीहै।

संयुक्त परिवार की व्यवस्था में कुछ त्रुटियाँ आईं। यातायात के साधनों के विकास, शिक्षा का विकास और एक—दूसरे की संस्कृतियों के मिलन से कुछ परिवर्तन आया। बड़े परिवार विभक्त होने लगे। एकजुटता, अनुशासन, परस्पर सहयोग की भावना में अंतर आने लगा। परिणामत: एक—दूसरे के निकट होते हुए भी परस्पर एक—दूसरे का सहयोग करना दूर की बात हो गई।

छोटे—छोटे परिवारों की भी विचित्र हालत हो गई। उनमें भी स्वार्थ की भावना और अहंकार की प्रबलता इस प्रकार बढ़ रही है कि वे भी एक साथ रहने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं। एक मकान में रहते हुए भी परस्पर कोई

संवाद नहीं हो रहा है। एक—दूसरे से कट रहे हैं। कटुता बढ़ रही है। ऐसी परिस्थिति में एक साथ रहना कैसे संभव हो सकता है? तलाक, वैमनस्य, कोर्ट में मुकदमों की भरमार है। वर्षों से कोई नतीजा नहीं निकल रहा है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति क्या करे? परिवार नहीं बनाए, पशुओं की तरह प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रहे और जिए, यह भी बुद्धिमानी नहीं है। तब आखिर समझदार मनुष्य को कोई रास्ता तो खोजना ही होगा।

समझदार मनुष्य क्या करें?

समझदारी का पहला तकाजा है—व्यक्ति सोचे कि उसे किस तरह का जीवन जीना है! उसमें बुद्धि है, समझ है, साधना के द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की क्षमता है, तो क्यों नहीं वह इसका उपयोग करे! उस उपयोग में गुरु का मार्गदर्शन सदैव आवश्यक होता है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के उर्वर मस्तिष्क में सदैव नई—नई उर्मियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। उन्होंने वीतराग साधक होते हुए; परिवार, समाज और राष्ट्र की हित—चिंता करते हुए पारिवारिक सौहार्द शिविर की परिकल्पना की दृष्टि प्रदान की। परम पूज्य आचार्यश्री महाश्रमणजी ने उस कार्य के लिए प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मुझे प्रोत्साहित किया। मैंने श्री पद्मचंद पटावरी, कमल पटावरी से विमर्श किया—पारिवारिक प्रशिक्षण शिविर पटावरी परिवार का रखा जाए तो कैसा रहेगा? उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—यह पटावरी परिवार के लिए प्रसन्नता का विषय होगा? क्यों नहीं इसे आप मोमासरवासियों के परिवार के रूप में परिणत कर दें, जिससे पूरे गाँव के परिवार को लाभ मिले? साथ ही दूसरे गाँवों के सदस्य, परिवारों एवं सभाओं के अध्यक्ष तथा मंत्री व सदस्य भी प्रेरित होंगे कि हमारे गाँव के परिवारों की भी कार्यशाला हो।

आवश्यक है पारिवारिक प्रशिक्षण कार्यशाला

आज आवश्यक है पारिवारिक सौहार्द प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन। हजार भाषणों की अपेक्षा एक कार्यशाला व्यक्तित्व के रूपांतरण में सहयोगी बनती है। उपदेश की अपेक्षा प्रयोग अत्यावश्यक है। पूज्यवरों का यह उपक्रम परिवार व समाज को नई शिक्षा और दृष्टि देगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि समाज के युवक, प्रौढ़ और वृद्धजन इसके महत्त्व को समझकर अपने जीवन—व्यवहार में रूपांतरण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगे। आनेवाले समय में उपासना में आनेवाले सदस्य व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे और नए परिवार व समाज का निर्माण हो सकेगा।